वैदिकधर्म

आश्विन सं. २००३
अक्तूबर १९४६

विषयसूची।

संपादक
पं. श्रीपाद दामोदर सातवळेकर

वार्षिक मूल्य
म. ऑ. से ५) रु.; वी. पी. से ५।=) रु.
विदेशके लिये १५ शिलिंग।
इस अंकका मू. ॥) रु.

क्रमांक ३२२

वैदिक धर्म

क्रमांक ३२२

वर्ष २७ | आश्विन विक्रमीय संवत् २००३; अक्तूबर १९४६ | अंक १०

विश्वरूप प्रभु

प्रजापतिश्चरति गर्भे अन्तरजायमानो बहुधा विजायते ।
तस्य योनिं परिपश्यन्ति धीरास्तस्मिन् ह तस्थुर्भुवनानि विश्वा ॥

(वा. य. ३१।१९)

एषो ह देवः प्रदिशोऽनु सर्वाः पूर्वो ह जातः स उ गर्भे अन्तः ।
स एव जातः स जनिष्यमाणः प्रत्यङ् जनास्तिष्ठति सर्वतोमुखः ॥

(वा. य. ३२।४)

प्रजापतिश्चरति गर्भे अन्तरजायमानो बहुधा विजायते ।
अर्धेन विश्वं भुवनं जजान यदस्यार्धं कतमः स केतुः ॥

(अथर्व. १०।८।१३)

"सब प्रजाओंका पालक (एक होता हुआ भी अनेक होनेके लिये) गर्भमें प्रविष्ट होता है। वह स्वयं अजन्मा होता हुआ भी अनेक (प्राणियोंके रूपोंमें) विशेष प्रकारसे प्रकट होता है। यही देव सब (दिशा और) उप-दिशाओंमें (भरपूर भरा है), वह पहिले भी जन्मा था और अब भी गर्भमें आया है। वही (पूर्व समयमें) जन्मा था और भविष्यमें भी वही जन्म लेगा (और इस समय वही जन्म ले रहा है)। हे लोगों! सब ओर मुख करके (प्रत्येक प्राणीके रूपमें) वही ठहरा है। प्रजाओंका पालक प्रभु गर्भके अन्दर संचार करता है, वह अजन्मा होता हुआ भी बहुत रूपोंमें विविध प्रकार प्रकट होता है। उसने अपने आधे भागसे सबका सब विश्वरूप बनाया है, और उसका जो शेष आधा भाग रहा है, वह भला कैसा जाना जायगा?"

इस विश्वमें जो स्थिरचर वस्तुमात्र है, जो नाना प्रकारके प्राणी हैं, जो जीवजन्तु हैं, वे सबके सब प्रजापतिके रूप हैं। वह भूत कालमें जैसा विश्वरूप बना था, वैसाही भविष्यमें बनेगा और इस समय भी वही विश्वरूप बना है। प्रभुका एक अंश विश्वाकार बना है और यही विश्वरूप साधकोंको सेवनीय है।

प्रेममय भगवान्

यः श्रमात् तपसो जातो,
लोकान्त्सर्वान्त्समानशे,
सोमं यश्चक्रे केवलं,
तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ॥

(अथर्व० १०.७.३६)

" जो परमेश्वर अपने सामर्थ्यसे प्रकट हुआ सब लोकोंको भीतर बाहर व्याप्त किये हुए है, जिसने अकेले प्रेमको अपनी प्राप्तिका साधन बनाया है, उस सबसे बडे ब्रह्मको नमस्कार है । "

निज सामर्थ्य और प्रेमसे,
प्रकट हुआ जो लोकोंमें ।
अन्दर बाहर व्याप्त हो रहा;
रमा हुआ सब लोकोंमें ॥

अपने पानेका साधन जिस
प्रेम बनाया कृपानिधान
उस महान जगदीश्वरको है
अर्पित मेरा नम्र प्रणाम ॥

लालचन्द्र

ॐ

ऋग्वेदका सुबोध भाष्य

(८)

पराशर ऋषिका दर्शन

(ऋग्वेदका बारहवाँ अनुवाक)

लेखक

पं० श्रीपाद दामोदर सातवळेकर,

अध्यक्ष स्वाध्याय-मण्डल, औन्ध, [जि० सातारा]

संवत् २००३

मूल्य १) रु०

मुद्रक तथा प्रकाशक- **वसंत श्रीपाद सातवळेकर**, B. A.
भारत-मुद्रणालय, औंध (जि. सातारा)

पराशर ऋषिका तत्त्वज्ञान

ऋग्वेदमें पराशर ऋषिके मंत्र प्रथम मण्डलके बारहवें अनुवाकमें हैं और सोमके मंत्र नवम मण्डलमें ९७ वें सूक्तमें हैं, इनका ब्यौरा ऐसा है-

सूक्तवार मन्त्र-संख्या

ऋग्वेद प्रथममण्डल

द्वादशवाँ अनुवाक

सूक्त	देवता	मंत्रसंख्या	छन्द	
६५	अग्निः	१०	द्विपदा विराट्	
६६	,,	१०	,,	
६७	,,	१०	,,	
६८	,,	१०	,,	
६९	,,	१०	,,	
७०	,,	११	,,	
७१	,,	१०	त्रिष्टुप्	
७२	,,	१०	,,	
७३		१०	,,	९१
नवम-मंडल				
९७	पवमानः सोमः	१४	,,	१४

कुलमंत्र-संख्या १०५

देवतावार मंत्र-संख्या

देवतावार मंत्र-संख्या इस तरह होती है—

अग्निदेवता	९१
पवमानः सोमः	१४
कुलमंत्र-संख्या	१०५

पराशर ऋषिके मंत्रोंमें अग्निदेवताकेही मंत्र विशेषतया हैं। अग्नि और सोमके सिवाय अन्य देवतापर इस ऋषिके मंत्र नहीं हैं।

इनमें द्विपदा विराट् (दो चरणोंवाले विराट् छन्द) के मंत्र ६१ हैं और चार चरणोंके त्रिष्टुप् छन्दके मंत्र ४४ हैं। अर्थात् पहिले ६१ मंत्र चार चरणोंके बनाये तो वे केवल ३०॥ ही होंगे। द्विपदा विराट् छन्दका मंत्र आधे मंत्रके समान ही होता है।

अथर्ववेदमें इस ऋषिके मंत्र नहीं हैं।

'पराशरः' पद निघण्टु ४।३ में पदनामोंमें लिखा है। इसका विवरण श्री. यास्कमुनि निरुक्तमें ऐसा लिखते हैं-

पराशरः पराशीर्णस्य वसिष्ठस्य स्थविरस्य जज्ञे। 'पराशरः शतयातुर्वसिष्ठः' (ऋ. ७।१८।२१) इत्यपि निगमो भवति। इन्द्रोऽपि पराशर उच्यते, पराशातयिता यातूनाम्। 'इन्द्रो यातूनां अभवत् पराशरः' (ऋ. ७।१०४।२१) इत्यपि निगमो भवति॥ निरुक्त. [६।४।३०(१२१)]

अत्यंत वृद्ध वसिष्ठका (माना हुआ) पुत्र पराशर है। इन्द्रको भी पराशर कहते हैं, क्योंकि वह शत्रुओंका बडा दमन करता है। इस विषयमें दो मंत्र देखनेयोग्य है-

प्र ये गृहादममदुस्त्वाया पराशरः शतयातुर्वसिष्ठः। न ते भोजस्य सख्यं मृषन्ताधा सूरिभ्यः सुदिना व्युच्छान्॥ (ऋ. ७।१८।२१)

इन्द्रो यातूनामभवत्पराशरो हविर्मथीनामभ्याविवासताम्। अभीदु शक्रः परशुर्यथा वनं पात्रेव भिन्दन्त्सत एति रक्षसः॥

(ऋ. ७।१०४।२१; अथर्व. ८।४।२१)

'पराशर, शतयातु और वसिष्ठ ये तीनों ऋषि तेरी भक्ति करके यज्ञगृहमें बडे आनन्दित हो रहे हैं। ये तीनों तेरी मित्रताका कभी निरादर नहीं करते हैं। सब विद्वानोंके लिये शुभदायक दिनोंकाही उदय हो जावे।' इस मंत्रमें पराशर, शतयातु और वसिष्ठ इन तीनोंके नाम हैं और यह मंत्र वसिष्ठका है।

ऊपर दिया दूसरा मंत्र भी वसिष्ठ ऋषिकाही है— "इन्द्र दुष्ट शत्रुओंका पूर्ण नाश करता है, ये शत्रु यज्ञके हविका नाश करते थे। इन्द्रने इनका नाश ऐसा किया कि जैसा कुल्हाडेसे

नका नाश होता है, अथवा (मिट्टीके) बर्तन जैसे तोडे जा सकते हैं," यहां इन्द्रका विशेषण 'परा-शर' (दूर करके नाशकर्ता) इस अर्थका आया है। पूर्व मंत्रमें यह नाम ऋषिका नाम है और यहां यह पद इन्द्रका सामर्थ्य बता रहा है। ऋग्वेदमें इन दोही मंत्रोंमें 'पराशर' पद आया है। अथर्ववेदमें दो वार पराशर पद है वे मंत्र अब देखिये—

अव मन्युरवायताव बाहू मनोयुजा।
पराशर त्वं तेषां पराञ्चं शुष्ममर्दयाधा नो
रयिमा कृधि ॥ (अ. ६।६५।१)

अथर्ववेदमें आया दूसरा मंत्र, ऊपर दिया दूसरा मंत्रही है, अतः उसके यहां पुनः लिखनेकी आवश्यकता नहीं है।

'क्रोध दूर हो, शस्त्र दूर रहें, मनसे (मारनेके लिये) प्रेरित हुए हाथ दूर हों, हे (पराशर) दूरसे शत्रुको मारनेवाले वीर ! तू उन शत्रुओंके बलको दूर करके नष्ट कर और हमें धन दे।' यहां भी दूरसे शत्रुका नाश करनेवाले वीर इन्द्रकाही यह वर्णन है। यह पराशर ऋषिका वाचक पद नहीं है। अन्यत्र संहिताओंमें पराशर पद नहीं है। ऊपर दिये मंत्र 'पराशर' का अर्थ तथा उसकी व्युत्पत्ति बताते हैं। **'यातूनां पराशरः'** (शत्रुओंका नाश करनेवाला), **'परा शुष्मं अर्दय'** (दूर करके शत्रुके बलका नाश कर) ये मंत्रभाग 'परा-शर' की व्युत्पत्ति तथा अर्थ बता रहे हैं।

पराशीर्णस्य स्थविरस्य जज्ञे ॥ (६।३०)

इसके अर्थका अक्षरशः ग्रहण करते हुवे कई लोग **पराशरको वसिष्ठ** पुत्र मानते हैं, परन्तु यह मानना ठीक नहीं। आगे लिखी हुई कथासे ऐसा निश्चय हो जाता है कि, वृद्धावस्थामें सब पुत्रोंका निधन होनेसे दुखी होगये हुवे **वसिष्ठको पराशर** आधारभूत हुवे। यही निश्चय ठीक है। महाभारतमें भी इसीका अनुवाद किया है।

एक बार पुत्र-निधनसे विरक्त होकर **वसिष्ठजी** अपने आश्रमसे चल पडे। वसिष्ठके मृत पुत्र **शक्तिकी** विधवा पत्नी **अदृश्यन्ती** भी उनके पीछे चलने लगी। अचानक **वसिष्ठजीको** ज्ञात हुवा कि अपने पीछेसे कहींसे वेदध्वनि सुनाई दे रही है। ध्यान देकर सुननेपर वे समझ गये कि **अदृश्यन्तीके** उदरमें जो गर्भ है, वही वेदगान कर रहा है। तब उन्हें विश्वास आगया कि उनका वंश अभी जीवित है। वे वापस लौटे। कुछ दिनोंके बाद '**अदृश्यन्ती**' प्रसूत होकर **पराशरजीका** जन्म हुवा। इनका लालन-पालन इनके पितामह **वसिष्ठजीने** ही किया। इसलिये ये **वसिष्ठजीको** ही "पिताजी" कहकर यह पराशर बालपनमें पुकारा करते। **अदृश्यन्तीने** कईबार इन्हें समझाया कि वे तुम्हारे दादा हैं, नकि पिता हैं। परन्तु उस बिचारे छोटे बच्चेको दादा और पिता इनका भेद क्या मालूम ! परन्तु **पराशर** बडे हो जानेपर **अदृश्यन्तीने** एक दिन उन्हें राक्षसके द्वारा मृत हो गये हुवे उनके पिता-**शक्तिकी** कहानी सुनाई। **पराशरजी** अत्यन्त क्रुद्ध होकर सारे विश्व नाश करनेके लिये प्रवृत्त हुवे। जब **वसिष्ठजीको** इस बातका पता चला, तब उन्होंने **पराशरजीको और्वकी** कथा सुनाकर इस निश्चयसे परावृत्त किया। फिर भी **पराशरजीके** मनमें राक्षसोंके विषयमें जो क्रोध निर्माण हुवा था, वह शान्त न होने पाया। आगे चलकर इन्होंने सर्व आबाल वृद्ध राक्षसोंका वध करनेके हेतुसे राक्षस-सत्रका प्रारम्भ किया। इस बार **वसिष्ठजी** कुछ नहीं बोले। परन्तु निरपराध राक्षसोंका संरक्षण करनेके लिये **पुलह, पुलस्त्य, क्रतु, महाक्रतु** इत्यादि बडे बडे मुनि वहां आ पहुंचे। महर्षि **पुलस्त्यने पराशरजीको** कहा कि निरपराध, निर्दोष राक्षसोंकी हत्या निष्कारण ही हो जायगी। यह बात उचित नहीं है। तब **वसिष्ठजीने** अपने पौत्रको उपदेश कर उस राक्षससत्रसे निवृत्त किया। फिर **पुलस्त्यजीने** सन्तुष्ट होकर **पराशरको** "तुम सकलशास्त्रपारंगत और पुराणवक्ता हो जाओगे।" ऐसे दो वर दिये।

पुराणसंहिताकर्ता भवान्वत्स भविष्यति।
देवतापारमार्थ्यं च यथावद्वेत्स्यते भवान् ॥
(विष्णु० १।२६)

पराशरजीने राक्षससत्रके लिये जो अग्नि सिद्ध किया था उसे उन्होंने हिमाचलके उत्तरी दिशाके एक अरण्यमें धर दिया। ऐसा कहते हैं कि वह अग्नि आज भी पर्वदिनपर राक्षस, पाषाण और वृक्षोंको खाता है।

ततो दृष्ट्वाऽऽश्रमपदं रहितं तैः सुतैर्मुनिः।
निर्जगाम सुदुःखार्तः पुनरप्याश्रमात्ततः ॥ १ ॥
अथ शुश्राव संगत्या वेदाध्ययननिःस्वनम् ॥१३॥
अनुव्रजति को न्वेष मामित्येवाथ सोऽब्रवीत् ॥१४॥

अदृश्यन्त्युवाच—
शक्तेर्भार्या महाभाग तपोयुक्ता तपस्विनम् ।
अहमेकाकिनी चापि त्वया गच्छामि नापरः ॥१५॥
वसिष्ठ उवाच—
पुत्रि कस्यैष साङ्गस्य वेदस्याध्ययनस्वनः ॥ १६ ॥
अदृश्यन्त्युवाच—
अयं कुक्षौ समुत्पन्नः शक्तेर्गर्भः सुतस्य ते ॥१७॥
गन्धर्व उवाच–
एवमुक्तस्तया हृष्टो वसिष्ठः श्रेष्ठभागृषिः ।
अस्ति सन्तानमित्युक्त्वा मृत्योः पार्थ न्यवर्तत १८
(म. आ. १९३)

गन्धर्व उवाच—
आश्रमस्था ततः पुत्रमदृश्यन्ती व्यजायत ।
शक्तेः कुलकरं राजन् द्वितीयमिव शक्तिनम् ॥१॥
जातकर्मादिकास्तस्य क्रियाः स मुनिसत्तमः ।
पौत्रस्य भरतश्रेष्ठ चकार भगवान्स्वयम् ॥२॥
परासुः स यतस्तेन वसिष्ठः स्थापितो मुनिः ।
गर्भस्थेन ततो लोके पराशर इति स्मृतः ॥३॥
स तात इति विप्रर्षिं वसिष्ठं प्रत्यभाषत ॥५॥
तातेति परिपूर्णार्थं तस्य तन्मधुरं वचः ।
अदृश्यन्त्यश्रुपूर्णाक्षी शृण्वन्ती तमुवाच ह ॥६॥
मा तात तात तातेति ब्रूह्येनं पितरं पितुः ।
रक्षसा भक्षितस्तात तव तातो वनान्तरे ॥७॥
स एवमुक्तो दुःखार्तः सत्यवागृषिसत्तमः ।
सर्वलोकविनाशाय मतिं चक्रे महामनाः ॥९॥
तं तथा निश्चितात्मानं स महात्मा महातपाः ॥१०॥
वसिष्ठो वारयामास ... ... ॥११॥
(म. आ. १९४)

वसिष्ठ उवाच—
तस्मात्त्वमपि भद्रं ते न लोकान्हन्तुमर्हसि ॥२३॥
(आ. १९६)

एवमुक्तः स विप्रर्षिर्वसिष्ठेन महात्मना ।
न्ययच्छदात्मनः क्रोधं सर्वलोकपराभवात् ॥१॥
ईजे च स महातेजाः सर्ववेदविदां वरः ।
ऋषी राक्षससत्रेण शाक्तेयोऽथ पराशरः ॥२॥
न हि तं वारयामास वसिष्ठो रक्षसां वधात् ॥४॥

तथा पुलस्त्यः पुलहः क्रतुश्चैव महाक्रतुः ।
तत्राजग्मुरमित्रघ्न रक्षसां जीवितेप्सया ॥९॥
पुलस्त्य उवाच—
कच्चित्तातापविघ्नं ते कच्चिन्नन्दसि पुत्रक ।
अजानतामदोषाणां सर्वेषां रक्षसां वधात् ॥११॥
गन्धर्व उवाच—
एवमुक्तः पुलस्त्येन वसिष्ठेन च धीमता ।
तदा समापयामास सत्रं शाक्तो महामुनिः ॥२२॥
सर्वराक्षससत्राय संभृतं पावकं तदा ।
उत्तरे हिमवत्पार्श्वे उत्ससर्ज महावने ॥२३॥
स तत्राद्यापि रक्षांसि वृक्षानश्मन एव च ।
भक्षयन्दृश्यते वह्निः सदा पर्वणि पर्वणि ॥२४॥
(म. आ. १९७)

एकबार जबकि **पराशरजी** तीर्थयात्रा कर रहे थे, उन्होंने यमुनाके जलमें नाव चलाती हुई **सत्यवतीको** देखा। **पराशरजी** उसपर लुब्ध हुवे और उन्होंने उसके पास कामपूर्तिकी इच्छा प्रकट की, उन्होंने चारों ओर धूंवा निर्माण किया। **सत्यवतीने** कौमार्यभंग होनेकी शंका प्रकट करनेपर इन्होंने तपश्चर्याके बलपर उसे दूर किया और **सत्यवतीके** शरीरको मछलियाँ पकडनेके कारण जो दुर्गंधि आया करती थी उसे हटाकर उसके शरीरकी सुगंधि एक योजनतक पहुंचेगी ऐसी व्यवस्था की। इन दोनोंके समागमसे **वेद व्यासजी** जन्म पा चुके। वे द्वीपमें पैदा हो गये थे, इसलिये उन्हें **द्वैपायन** कहने लगे।

भीष्मस्तु... सत्यवतीमानयामास मातरं ।
यामाहुः कालीति । तस्यां पूर्वं पराशरात्कन्या-
गर्भो द्वैपायनः॥ (म. आ. ६३।५१,५२)
सत्यवतीकाही दूसरा नाम **काली** है।

महाभारतमें **पराशरजीके** धर्मविषयक मतोंका उल्लेख बडे गौरवके साथ किया हुवा है।

वृद्धः पराशरः प्राह धर्मं शुभ्रमनामयम् ॥
(म. अ. १४६,४)

इन्होंने **युधिष्ठिरको** ध्यानमाहात्म्य कथन किया है। परीक्षितके प्रायोपवेशनके समयपर ये गंगातटपर उपस्थित हुवे थे। ऐसा भी उल्लेख पाया जाता है कि आप इन्द्रप्रस्थमें उपस्थित थे।

पराशरः पर्वतश्च । (म. स. ७।१०)

इनके वंशमें **वसिष्ठ, मित्रावरुण** तथा **कुण्डिन** इन तीन प्रवरोंके **गौरपराशर, नीलपराशर, कृष्णपराशर, श्वेतपराशर, श्यामपराशर** और **धूम्रपराशर** एवं छः भेद हो गये। इन छः में फिर पांच उपभेद हुवे। जिनके नाम–

गौरपराशर— कांडशय (काण्डूशय), गोपालि, जैह्वाप (समय), भौमतापन (समतापन), वाहनप (वाह्यौज).

नीलपराशर— केतुजातय, ख्यातेय, प्रपोहय वाह्यमय, हर्यश्वि.

कृष्णपराशर— कपिमुख (कपिश्रवस्), काकेयस्थ (कार्केय) कार्ष्णायन जपातय (ख्यातपायन), पुष्कर.

श्वेतपराशर— इषीकहस्त, उपय, बालेय, श्राविष्ठायन, स्वायष्ट।

श्यामपराशर— क्रोधनायन, क्षैमि, बादरि, वाटिका, स्तंब

पराशरजीने जनकको किये हुवे तत्त्वज्ञानके उपदेशका अनुवादही **भीष्मजीने युधिष्ठिरसे** महाभारतके शान्ति पर्वमें २९६ वे अध्यायसे लेकर ३०४ वे अध्यायतक कहा है, जिसका कि नाम **पराशर** गीता है। **सारस्वतने पराशर-जीको** और उन्होंने **मैत्रेयको** विष्णुपुराण कहा। भागवतमें कहा है कि सांख्यायन ऋषीने **पराशर** और **बृहस्पति** इन्हें भागवत पुराण कथन किया। आगे चलकर **पराशर-जीने मैत्रेयको** भागवत कथन किया।

पराशरजीके नामपर और भी कुछ ग्रन्थ हैं।

(१) बृहत्पाराशर होराशास्त्र। (१२००० श्लोकोंका ज्योतिषविषयक ग्रन्थ)

(२) लघु पाराशरी।

(३) बृहत्पाराशरीय धर्मसंहिता। (३३०० श्लोक)

(४) पाराशर धर्मसंहिता। (स्मृति)

(५) पाराशरोदितं वास्तुशास्त्रम्। (जिसका कि उल्लेख विश्वकर्माने किया है।)

(६) पाराशर संहिता। (वैद्यकशास्त्र)

(७) पराशरोपपुराण (माधवाचार्यद्वारा इसके कुछ उद्धरण लिये गये हैं।)

(८) पराशरोदितं नीतिशास्त्रम्। (जिसका उल्लेख विष्णुशर्मा, तथा चाणक्यने किया है।)

(९) पराशरोदितं केवलसारम्।

पराशरजीने अपने ज्योतिष-ग्रन्थमें वसन्तसम्पातस्थितिका वर्णन किया है। उस परसे यह अनुमान हो सकता है कि वसन्तसम्पातका वर्णन करनेवाला **पराशरजी** खिस्ताब्दिपूर्व तेरहवे अथवा चौदहवे शतकमें जन्म पा चुके होंगे।

पराशरजी स्मृतिकार हैं। इनकी स्मृति याज्ञवल्क्यस्मृतिके जैसीही प्राचीन है। धर्मशास्त्रके अनेक लेखकोंने उसे प्रमाण मानकर उसके वचन उद्धृत किये हैं। गरुडपुराणमें इस स्मृतिका सारांश दिया हुवा है। **कौटिल्यने** राजधर्मपर विवेचन करते समय इसका उल्लेख किया है। इस स्मृतिमें १२ अध्याय तथा ५९२ श्लोक हैं। उनमें आचार और प्रायश्चित्त इनका विचार किया है। इस स्मृतिमें क्षत्रियोंके कर्तव्योंके सम्बन्धमें अधिक विवेचन किया है। यह स्मृति कलियुगके लिये है। कृत, त्रेता, द्वापार और कलि इन युगोंमें क्रमवार **मनु, गौतम, शंख-लिखित** और **पराशर** ये ऋषि धर्मरक्षा करेंगे, ऐसा भी एक विधान इसमें है।

कलौ पाराशरः स्मृतः।

पराशरजीने पुत्रोंके औरस, क्षेत्रज, दत्तक तथा कृत्रिम ऐसे चार भेद किये हैं। सती होनेके सम्बन्धमें भी इन्होंने कुछ विचार प्रकट किये हैं। इनकी स्मृतिमें मनु आदि धर्मशास्त्रकारोंका उल्लेख है। **मनुके** उल्लेखमें इन्होंने उन्हें सर्व शास्त्रोंके ज्ञाता बताया है। इन्होंने वेद, वेदांग, धर्मशास्त्र तथा स्मृति, इनका भी विचार किया है। अपने स्मृतिके ग्यारहवे अध्यायमें इन्होंने कुछ ऋग्वेदके तथा शुक्ल यजुर्वेदके मन्त्र उद्धृत किये हैं। मिताक्षरा, अपरार्क, स्मृतिचन्द्रिका, हेमाद्रि इत्यादि ग्रन्थकारोंने इनकी स्मृतिके उल्लेख किये हुवे हैं। विश्वरूपने भी कई बार इनकी स्मृतिका उल्लेख किया है, इससे अनुमान होता है कि, नौवे शतकके पूर्वार्धमें इस स्मृतिके वचन प्रमाणभूत माने जाते थे। जीवानन्द संग्रहमें बृहत्पाराशर संहिता पायी जाती है। उसमें १२ अध्याय तथा ३३०० श्लोक हैं। यह संहिता **पराशरजीने** सुव्रतसे कही है। आज जो पराशर स्मृति उपलब्ध है, वह **सुव्रतने** की हुई संक्षित आवृत्ति होगी। बृहत्पाराशर यह ग्रन्थ इस स्मृतिके पश्चात्का हो सकता है। **अपरार्क** और **माधवने** वृद्ध पाराशरका उल्लेख किया

हुवा है। और हेमाद्रि तथा भट्टोजी दीक्षित ने भी ज्योतिःपराशरका उल्लेख किया है।

धूम्रपराशर- खल्यायन, तन्ति (जर्ति), तैलेय, यूथप, वार्ष्णायन,

इन सबके प्रवर पराशर, वसिष्ठ और शक्ति ये तीन हैं।

काण्डशयो वाहनपो जैह्मपो भौमतापनः।
गोपालिरेषां पञ्चम एते गौराः पराशराः ॥३३॥
प्रपोहया वाह्यमयाः ख्यातेयाः कौतुजातयः।
हर्यश्विः पञ्चमो येषां नीला ज्ञेयाः पराशराः॥३४॥
कार्ष्णायनाः कपिमुखाः काकेयस्था जपातयः।
पुष्करः पञ्चमश्चैषां कृष्णा ज्ञेयाः पराशराः ॥३५॥
श्राविष्ठायनबालेयाः स्वायष्टाश्चोपयाश्च ये।
इषीकहस्तश्चैषे वै पञ्च श्वेताः पराशराः ॥३६॥
वाटिको बादरिश्चैव स्तम्बा वै क्रोधनायनाः।
क्षैमिरेषां पञ्चमस्तु एते श्यामाः पराशराः ॥३७॥
खल्यायना वार्ष्णायनास्तैलेयाः खलु यूथपाः।
तन्तिरेषां पञ्चमस्तु एते धूम्राः पराशराः ॥३८॥
पराशराणां सर्वेषां त्र्यार्षेयः प्रवरो मतः।
पराशरश्च शक्तिश्च वसिष्ठश्च महातपाः ॥३९॥

(१) यह पराशर व्यासजीके ऋक्‌शिष्यपरम्पराके बाष्कलका शिष्य था। इसके नामको उद्देश करके इसकी शाखाको पाराशरी नाम मिला है। यह ऋग्वेदका श्रुतर्षि तथा ऋषिक ब्रह्मचारी है।

(२) वायु और ब्रह्माण्ड पुराणके मतानुसार एक पराशर व्यासजीके सामशिष्यपरम्पराके हिरण्यनाभका शिष्य है।

(३) व्यासजीके सामशिष्यपरम्पराके कुथुमीके एक शिष्यका नाम पराशर है।

(४) ब्रह्माण्ड पुराणके मतानुसार व्यासजीके यजुःशिष्यपरम्पराके याज्ञवल्क्यका एक वाजसनेय शिष्य भी पराशर नामका था।

(५) एक पराशर ऋषभ नामक शिवावतारका शिष्य है।

(६) पराशर यह नाम जनमेजयके सर्पसत्रमें मरे हुवे एक सर्पका भी पाया जाता है।

पराशरके विषयमें इस तरह महाभारतादिमें लिखा मिलता है। पराशर अनेक हुए हैं, उनमें सूक्त द्रष्टा पराशर वसिष्ठका पौत्र और शक्तिऋषिका पुत्र है, इसलिये उसको 'पराशरः शाक्त्यः' सूत्रकारने कहा है। अन्य पराशर उसके पश्चात्‌के हैं। तथापि इस बारेमें और अधिक खोज होनी चाहिये।

निवेदक
श्री. दा. सातवळेकर
स्वाध्याय-मण्डल

औंध जि. सातारा
१५ भाद्रपद संवत् २००३

वसिष्ठ-वंशमें पराशर ऋषि

मित्रा-वरुणौ

|

वसिष्ठः (ऋ. मं. ७)

|

- इन्द्रप्रमतिः (९।९७।४-६)
- उपमन्युः (९।९७।१३-१५)
- कर्णश्रुत् (९।९७।२२-२४)
- चित्रमहाः (१०।१२२।१-८)
- द्युम्नीकः (ऋ. ८।८७।१-६)
- शक्तिः ऋ. ७।३२।२६-२६; ९।९७।१९-२१; ९।१०८।३,१४-१६ (पत्नी अदृश्यन्ती)
  - पराशरः
- प्रथः (१०।१८१।१)
- मन्युः (ऋ. ९।९७।१०-१२)
- मृळीकः (९।९७।२५-२७)
- वसुक्रः (९।९७।२८-३०)
- वृषगणः (९।९७।७-९)
- व्याघ्रपाद् (ऋ. ९।९७।१६-१८)

ॐ

ऋग्वेदका सुबोध भाष्य

पराशर ऋषिका दर्शन

[ऋग्वेदका बारहवाँ अनुवाक]

(१) अग्निः

(ऋ. १।६५) पराशरः शाक्त्यः । अग्निः । द्विपदा विराट् ।

पश्वा न तायुं गुहा चतन्तं नमो युजानं नमो वहन्तम् १ १
सजोषा धीराः पदैरनु ग्मन्नुप त्वा सीदन् विश्वे यजत्राः २ २
ऋतस्य देवा अनु व्रता गुर्भुवत् परिष्टिर्द्यौर्न भूम ३ ३
वर्धन्तीमापः पन्वा सुशिश्विमृतस्य योना गर्भे सुजातम् ४ ४
पुष्टिर्न रण्वा क्षितिर्न पृथ्वी गिरिर्न भुज्म क्षोदो न शंभु ५ ५
अत्यो नाज्मन्त्सर्गप्रतक्तः सिन्धुर्न क्षोदः क ईं वराते ६ ६

अन्वयः— १-२ गुहा चतन्तं, नमः युजानं, नमः वहन्तं, पश्वा तायुं न, सजोषाः धीराः पदैः अनु ग्मन्, विश्वे यजत्राः त्वा उप सीदन् ॥

३-४ देवाः ऋतस्य व्रता अनु गुः । परिष्टिः भुवत्, भूम। द्यौः न (भुवत्)। ऋतस्य योना गर्भे सुजातं पन्वा सुशिश्विं ईं आपः वर्धन्ति ॥

५-६ पुष्टिः न रण्वा, क्षितिः न पृथ्वी, गिरिः न भुज्म, क्षोदः । न शंभु, अत्यः न अज्मन् सर्गप्रतक्तः, सिन्धुः न क्षोदः, ईं कः वराते ?

अर्थ- १-२ गुहामें रहनेवाले, अन्नको सिद्ध करनेवाले, अन्नको साथ रखनेवाले, पशुकी (चोरी करके उसके साथ रहनेवाले) चोरको जैसे, मिलकर रहनेवाले धीर वीर लोग, (उसके) पावोंके चिन्होंसे (पता लगाकर) प्राप्त करते हैं, वैसे वे सभी याजक तेरे समीप चारों ओर बैठते हैं ॥

३-४ देवोंने सत्यके व्रतोंके अनुकूल गमन किया (व्रतोंका पालन किया)। बडी खोज चारों ओर हुई। भूमि स्वर्ग समान (सुख देनेवाली बनायी गयी)। सत्यके बीचमें उत्तम प्रकार उत्पन्न, स्तुतिसे बढनेवाले इस (देवको) जलप्रवाह बढा रहे हैं ॥

५-६ पुष्टि जैसी रमणीय (होती है), भूमि जैसी विस्तीर्ण (होती है), पर्वत जैसा भोजन (देता है), जल जैसा हितकारी होता है, घोडा जैसा (युद्धके स्थानपर) वीरद्वारा प्रेरित होता हुआ दौडता (जाता है) जैसी नदी किनारोंको तोडती हुई (आगे बढती है, वैसाही यह अग्नि है)। इसको कौन रोक सकता है ?

जामिः सिन्धूनां भ्रातेव स्वस्रामिभ्यान्न राजा वनान्यत्ति	७	७
यद् वातजूतो वना व्यस्थादग्निर्ह दाति रोमा पृथिव्याः	८	८
श्वसित्यप्सु हंसो न सीदन् क्रत्वा चेतिष्ठो विशामुषर्भुत्	९	९
सोमो न वेधा ऋतप्रजातः पशुर्न शिश्वा विभुर्दूरेभाः	१०	१०

(२) [ऋ. १।६६]

रयिर्न चित्रा सूरो न संदृगायुर्न प्राणो नित्यो न सूनुः	१	११
तक्वा न भूर्णिर्वना सिषक्ति पयो न धेनुः शुचिर्विभावा	२	१२
दाधार क्षेममोको न रण्वो यवो न पक्वो जेता जनानाम्	३	१३
ऋषिर्न स्तुभ्वा विक्षु प्रशस्तो वाजी न प्रीतो वयो दधाति	४	१४
दुरोकशोचिः क्रतुर्न नित्यो जायेव योनावरं विश्वस्मै	५	१५
चित्रो यदभ्राट् छ्वेतो न विक्षु रथो न रुक्मी त्वेषः समत्सु	६	१६

७-८ सिन्धूनां जामिः, स्वस्रां भ्राता इव, इभ्यान् न राजा, वनानि अत्ति। यत् वातजूतः वना वि अस्थात्, अग्निः ह पृथिव्याः रोम दाति ॥

९-१० क्रत्वा विशां चेतिष्ठः, उषर्भुत्, सोमः न वेधाः, ऋतप्रजातः, पशुः न शिश्वा, विभुः, दूरेभाः हंसः सीदन् न अप्सु श्वसिति ॥

११-१२ रयिः न चित्रा, सूरः न संदृक्, आयुः न प्राणः, नित्यः न सूनुः, तक्वा न भूर्णिः, पयः न धेनुः, शुचिः विभावा वना सिषक्ति ॥

१३-१४ ओकः न रण्वः, पक्वः यवः न, क्षेमं दाधार। जनानां जेता, ऋषिः न स्तुभ्वा, विक्षु प्रशस्तः, प्रीतः वाजी न, वयः दधाति ॥

१५-१६ दुरोकशोचिः नित्यः क्रतुः न। योनौ जाया इव विश्वस्मै अरम्। चित्रः यत् अभ्राट् श्वेतः न, विक्षु रथः न रुक्मी, समत्सु त्वेषः ॥

७-८ यह नदियोंका मित्र, बहिनोंका भाई जैसा (हितकारी), शत्रुओंका जैसा राजा (नाश करता है, वैसा यह) वनोंको खा जाता है। जब वायुसे प्रेरित होकर यह वनोंपर आक्रमण करता है, (तब यह) अग्नि पृथ्वीके बालों (औषधियोंको) काटता है ॥

९-१० कर्म करके सब प्रजाओंको जगानेवाला, स्वयं उषःकालमें जागनेवाला, सोमके समान सबकी वृद्धि करनेवाला, सत्यके लियेही जो प्रकट हुआ है, पशुके समान चपल, सर्वत्र व्यापक और दूरतक प्रकाश फैलानेवाला (यह अग्नि) हंसके समान जलोंमें छिपा रहकर गति करता है ॥

११-१२ धनके समान वांछनीय, ज्ञानीके समान सम्यक् द्रष्टा, आयु देनेवाला जैसा प्राण है, निज पुत्रके समान सदा (हितकारी), चपल घोडेके समान पोषणकारी अन्न लानेवाला, जैसा दूध गौ धारण करती है वैसा यह पवित्र और प्रभावशाली अग्नि वनोंमें रहता है ॥

१३-१४ घरके समान रमणीय (यह अग्नि) पके जौके समान कल्याण करता है। जनोंको विजय प्राप्त करानेवाला, ऋषिके समान स्तुतिमें मग्न, प्रजाजनोंमें प्रशस्त, संतुष्ट हुए बलवान् (वीर) के समान (सबकी भलाईके लिये) जीवन अर्पण करता है ॥

१५-१६ जिसका तेज सहन करना अशक्य है (ऐसा यह अग्नि) नित्य शुभ कर्मके कर्ता (वीरके समान) कर्म करनेवाला है। घरमें स्त्रीके समान यह सबके लिये पर्याप्त (सुखदायी है)। विलक्षण तेजस्वी होकर जब यह प्रकाशता है तब तेजस्वी(वीर) के समान, प्रजाजनोंमें महारथी वीरकी तरह यह शोभता है, और समरोंमें तेजस्वी विजयी होता है ॥

सेनेव सृष्टामं दधात्यस्तुर्न दिद्युत् त्वेषप्रतीका	७	१७
यमो ह जातो यमो जनित्वं जारः कनीनां पतिर्जनीनाम्	८	१८
तं वश्चराथा वयं वसत्यास्तं न गावो नक्षन्त इद्धम्	९	१९
सिन्धुर्न क्षोदः प्र नीचीरैनोन्नवन्त गावः स्व१र्दृशीके	१०	२०

(३) [ऋ. १।६७]

वनेषु जायुर्मर्तेषु मित्रो वृणीते श्रुष्टिं राजेवाजुर्यम्	१	२१
क्षेमो न साधुः क्रतुर्न भद्रो भुवत् स्वाधीर्होता हव्यवाट्	२	२२
हस्ते दधानो नृम्णा विश्वान्यमे देवान् धाद्गुहा निषीदन्	३	२३
विदन्तीमत्र नरो धियंधा हृदा यत् तष्टान् मन्त्राँ अशंसन्	४	२४
अजो न क्षां दाधार पृथिवीं तस्तम्भ द्यां मन्त्रेभिः सत्यैः	५	२५
प्रिया पदानि पश्वो नि पाहि विश्वायुरग्ने गुहा गुहं गाः	६	२६

१७-१८ सृष्टा सेना इव अमं दधाति। त्वेषप्रतीका दिद्युत् अस्तुः न। जातः ह यमः, जनित्वं यमः। कनीनां जारः, जनीनां पतिः॥

१९-२० अस्तं न गावः। तं वः (त्वां) चराथा। वसत्या वयं इद्धं नक्षन्ते। सिन्धुः न क्षोदः नीचीः प्र ऐनोत्। स्वः दृशीके गावः नवन्ते॥

२१-२२ वनेषु जायुः, मर्तेषु मित्रः, अजुर्य राजा इव, श्रुष्टिं वृणीते। साधुः क्षेमः न, भद्रः क्रतुः न, होता हव्यवाट् स्वाधीः भुवत्॥

२३-२४ विश्वानि नृम्णा हस्ते दधानः, गुहा निषीदन्, अमे देवान् धात्। धियंधाः नरः अत्र ईं विदन्ति, यत् हृदा तष्टान् मन्त्रान् अशंसन्॥

२५-२६ अजः न क्षां पृथिवीं दाधार, द्यां सत्यैः मन्त्रेभिः तस्तम्भ। हे अग्ने! विश्वायुः (त्वं) पश्वः प्रिया पदानि नि पाहि, गुहा गुहं गाः॥

१७-१८ (शत्रुपर) भेजी हुई सेनाके समान यह बलको धारण करता है। वेगसे फेंके तेजस्वी विद्युत् सदृश अस्त्रके समान (यह भयप्रद है)। जो जन्मा है वह यमही है, और जो जन्मनेवाला है वह भी यमही है। यह कुमारिकाओंका प्रिय और स्त्रियोंका पति (अग्निही) है॥

१९-२० घरके पास जैसी गौवें (आती हैं) वैसे (मनुष्य) तुझ (अग्निके पास) आते हैं। (अपनी) बसती (के लोगोंके साथ) हम प्रदीप्त अग्निके पास पहुंचते हैं। नदी जैसी भरकर बहती है, वैसे नीचेकी ओर जलप्रवाह (इसने) चलाये हैं। वैसे अपनी दीप्तिसे दर्शनीय (अग्निके साथ) गौवें पहुंच जाती हैं॥

२१-२२ वनोंमें जैसा वैद्य, मानवोंमें मित्र सदृश (यह अग्नि), जरारहित वीरको जैसा राजा (स्वीकारता है) वैसा जनताके सहाय्यकारीको (यह) अपने पास स्वीकारता है (अपना मानता है)। जैसी साधुता हितकारी (होती है), और कर्तृत्वशक्ति जैसी कल्याण करती है, (वैसाही यह अग्नि) दाता, अन्नदानकर्ता और उत्तम कर्मकर्ता होता है।

२३-२४ (दानके लिये) सब धन अपने हाथमें रखकर, गुहामें रहते हुए इस (अग्निने) सब देवोंको बलमें रखा है। धारणावती बुद्धिसे युक्त नेताजन यहां इस (अग्नि) को तब जानते हैं, जब मनःपूर्वक बनाये मंत्रोंको गाया जाता है॥

२५-२६ अजन्मा जैसा (होकर इसने) विस्तृत भूमिका धारण किया है, और सत्य मंत्रोंसे द्युलोकको आधार दिया है। हे अग्ने! संपूर्ण आयु (देनेवाला तू) हमारे पशुओंके प्रिय स्थानों-की सुरक्षा कर, और गुहाओंके अत्यंत गुप्त स्थानमें संचार कर॥

य ईं चिकेत गुहा भवन्तमा यः ससाद धारामृतस्य	७	२७
वि ये चृतन्त्यृता सपन्त आदिद्वसूनि प्र ववाचास्मै	८	२८
वि यो वीरुत्सु रोधन्महित्वोत प्रजा उत प्रसूष्वन्तः	९	२९
चित्तिरपां दमे विश्वायुः सद्मेव धीराः संमाय चक्रुः	१०	३०

(४) [ऋ. १।६८]

श्रीणन्नुप स्थाद्दिवं भुरण्युः स्थातुश्चरथमक्तून् व्यूर्णोत्	१	३१
परि यदेषामेको विश्वेषां भुवद् देवो देवानां महित्वा	२	३२
आदित् ते विश्वे क्रतुं जुषन्त शुष्काद् यद् देव जीवो जनिष्ठाः	३	३३
भजन्त विश्वे देवत्वं नाम ऋतं सपन्तो अमृतमेवैः	४	३४
ऋतस्य प्रेषा ऋतस्य धीतिर्विश्वायुर्विश्वे अपांसि चक्रुः	५	३५
यस्तुभ्यं दाशाद् यो वा ते शिक्षात्तस्मै चिकित्वान् रयिं दयस्व	६	३६

२७-२८ यः ईं गुहा भवन्तं चिकेत, यः ऋतस्य धारां आ ससाद, ये ऋता सपन्तः वि चृतन्ति, आत् इत् अस्मै वसूनि प्र ववाच ॥

२९-३० यः वीरुत्सु महित्वा वि रोधत्, उत उत प्रजाः प्रसूषु अन्तः । चित्तिः अपां दमे विश्वायुः (तं) धीराः संमाय, सद्म इव, चक्रुः ॥

३१-३२ भुरण्युः श्रीणन् दिवं उपस्थात्, स्थातुः चरथं अक्तून् वि ऊर्णोत् । एषां विश्वेषां देवानां एकः देवः महित्वा यत् परि भुवत् ॥

३३-३४ हे देव ! यत् जीवः शुष्कात् जनिष्ठाः, आत् इत् विश्वे ते क्रतुं जुषन्त ! अमृतं एवैः सपन्तः विश्वे नाम ऋतं देवत्वं भजन्त ॥

३५-३६ ऋतस्य प्रेषाः, ऋतस्य धीतिः (अग्निः) विश्वायुः विश्वे अपांसि चक्रुः । यः तुभ्यं दाशात्, यः वा ते शिक्षात्, चिकित्वान् रयिं दयस्व ॥

२७-२८ जो इस (अग्नि) को गुहामें रहनेके समय जानता है, जो सत्यकी धाराको (प्राप्त करनेके लियेही) बैठा होता है, जो सत्यसे (उसका) सन्मान करते हुए (उसीका) विशेष गुणगान करते हैं, (वह) निःसन्देह उसके लिये धनोंकी (प्राप्तिके मार्ग) कहता है ॥

२९-३० जो वृक्षोंमें अपनी महिमासे रहता है, जो उनकी सन्तान (जैसा होता हुआ भी अपनी) माताओं (लकडियोंमें) रहता है । जो ज्ञानरूप जलोंके रूपमें विश्वका जीवन (जैसा होकर रहता है, उसको) बुद्धिमानोंने सम्मानपूर्वक घरके समान (अपना निवास-स्थान) बनाया है ॥

३१-३२ भरणपोषण कर्ता शोभाको बढाता हुआ द्युलोकके समीप गया है । (उसने) स्थावर जंगमोंको और रात्रियोंको भी प्रकाशित किया है । इन सब देवोंमें यही एक देव अपनी महिमासे सर्वोपरि (मुख्य) हुआ है ॥

३३-३४ हे देव ! जब जीव (बनकर) शुष्क काष्ठसे तूने जन्म लिया, तब सबोंने तेरी कर्तृत्वकी प्रशंसा की । (तुझ) अमर (देवकी) सब प्रगति करनेवालोंने जब प्राप्ति की, तब सब-हीको यश, सत्य और देवत्व प्राप्त हुआ ॥

३५-३६ सत्यका प्रेरक, सत्यका रक्षक, सब विश्वका प्राण (यह अग्नि है, इसकी प्रेरणासे) सब अपने अपने कर्म करते रहते हैं । (हे अग्ने !) जो तुझे अर्पण करता है अथवा जो तुझसे ज्ञान प्राप्त करता है, उसकी (योग्यता) जानकर(उसे तू) धन दे ॥

होता निषत्तो मनोरपत्ये स चिन्न्वासां पती रयीणाम्	७	३७
इच्छन्त रेतो मिथस्तनूषु सं जानत स्वैर्दक्षैरमूराः	८	३८
पितुर्न पुत्राः क्रतुं जुषन्त श्रोषन् ये अस्य शासं तुरासः	९	३९
वि राय और्णोद् दुरः पुरुक्षुः पिपेश नाकं स्तृभिर्दमूनाः	१०	४०

(५) [ऋ. १।६९]

शुक्रः शुशुक्वाँ उषो न जारः पप्रा समीची दिवो न ज्योतिः	१	४१
परि प्रजातः क्रत्वा बभूथ भुवो देवानां पिता पुत्रः सन्	२	४२
वेधा अदृप्तो अग्निर्विजानन्नूधर्न गोनां स्वाद्मा पितूनाम्	३	४३
जने न शेव आहूर्यः सन् मध्ये निषत्तो रण्वो दुरोणे	४	४४
पुत्रो न जातो रण्वो दुरोणे वाजी न प्रीतो विशो वि तारीत्	५	४५
विशो यदह्वे नृभिः सनीळा अग्निर्देवत्वा विश्वान्यश्याः	६	४६

३७-३८ (अयं अग्निः) मनोः अपत्ये होता निषत्तः, सः चित् नु आसां रयीणां पतिः । तनूषु मिथः रेतः इच्छन्तः, अमूराः स्वैः दक्षैः सं जानत ॥

३९-४० पितुः न पुत्राः अस्य शासं तुरासः ये श्रोषन् ते क्रतुं जुषन्त, पुरुक्षुः राय: दुरः वि और्णोत्, दमूनाः नाकं स्तृभिः पिपिशे ॥

४१-४२ उषः न जारः शुक्रः शुशुक्वान्, समीची दिवः न ज्योतिः पप्रा । प्रजातः क्रत्वा परि बभूथ, देवानां पुत्रः सन् पिता भुवः ॥

४३-४४ वेधाः अदृप्तः विजानन् अग्निः, गोनां ऊधः न, पितूनां स्वाद्म । जने न शेवः, मध्ये आहुर्यः सन्, दुरोणे निषत्तः रण्वः ॥

४५-४६ पुत्रः न जातः, दुरोणे रण्वः, वाजी न प्रीतः विशः वि तारीत् । नृभिः सनीळाः विशः, यत् अह्वे, अग्निः विश्वानि देवत्वा अश्याः ॥

३७-३८ (यह अग्नि) मनुकी संतानोंमें यज्ञ संपादनकर्ता करके बैठा है, वही सचमुच सब संपत्तियोंका स्वामी है । (स्त्री-पुरुष दोनोंके) शरीरोंमें परस्पर वीर्यके संबंधकी जब इच्छा होती है, (तब वे) अमूढ (उस विषयके ज्ञानी होकर) अपनेही सामर्थ्योंसे (उस पुत्र-प्राप्तिका मार्ग) ठीक तरह जानते हैं ॥

३९-४० जिस तरह पिताके (अधिकारको) पुत्र (प्राप्त करते हैं) इसकी शासन (आज्ञा) का त्वरासे जो पालन करते हैं, वे कर्तृत्वशक्तिको प्राप्त करते हैं। सबका पोषण करनेवाले (इस अग्नि) ने सब संपत्तिके द्वार खुले करके रखे हैं, (अपने) स्थानमें (संयमसे रहनेवाले इस अग्निने) स्वर्गको नक्षत्रोंसे सुशोभित किया है ॥

४१-४२ उषाके प्यारे (पति)के समान, यह तेजस्वी तथा दीप्तिमान् (अग्नि) परस्पर मिले द्युलोक (और भूलोक) में अपनी प्रभासे तेज भर देता है । उत्पन्न होतेही अपने कर्तृत्व (की प्रभासे सब विश्व इसने) घेर लिया, यह देवोंका पुत्र होता हुआ भी (उनका) पिता (पालनकर्ता) हुआ ॥

४३-४४ यह (सबका) विधाता गर्वहीन, ज्ञानी अग्नि, गौओंके दुग्धाशय (के दूध) के समान, अन्नोंको स्वादु करनेवाला है । जनोंमें यह सेवाके योग्य (वा सुखदायी है), (कठिन समयके) बीचमें (सहायार्थ) बुलानेयोग्य है, घरमें रहनेपर बडा शोभा देनेवाला है ॥

४५-४६ पुत्रका जन्म होनेसे जैसा घरमें वह रमणीय (प्रतीत होता है), संतुष्ट हुआ सामर्थ्ययुक्त वीर जैसा प्रजाजनोंका तारण करता है । नेताओंके साथ एक घरमें रहनेवाले प्रजाजन जिसको (सहायतार्थ) बुलाते हैं, वह अग्नि सब देवभावोंको प्राप्त करता है ॥

नकिष्ट एता व्रता मिनन्ति नृभ्यो यदेभ्यः श्रुष्टिं चकर्थ ७ ४७
तत् तु ते दंसो यदहन्त्समानैर्नृभिर्यद्युक्तो विवे रपांसि ८ ४८
उषो न जारो विभावोस्रः संज्ञातरूपश्चिकेतदस्मै ९ ४९
त्मना वहन्तो दुरो व्यृण्वन् नवन्त विश्वे स्व१र्दृशीके १० ५०

(६) [ऋ. १।७०]

वनेम पूर्वीरर्यो मनीषा अग्निः सुशोको विश्वान्यश्याः १ ५१
आ दैव्यानि व्रता चिकित्वाना मानुषस्य जनस्य जन्म २ ५२
गर्भो यो अपां गर्भो वनानां गर्भश्च स्थातां गर्भश्चरथाम् ३ ५३
अद्रौ चिदस्मा अन्तर्दुरोणे विशां न विश्वो अमृतः स्वाधीः ४ ५४
स हि क्षपावाँ अग्नी रयीणां दाशद् यो अस्मा अरं सूक्तैः ५ ५५
एता चिकित्वो भूमा नि पाहि देवानां जन्म मर्तांश्च विद्वान् ६ ५६

४७-४८ ते एता व्रता नकिः मिनन्ति, यत् एभ्यः नृभ्यः श्रुष्टिं चकर्थ। ते तत् तु दंसः, यत् अहन्, समानैः नृभिः युक्तः रपांसि, यत् विवेः ॥

४९-५० उषः न जारः विभावा उस्रः संज्ञातरूपः अस्मै चिकेतत्। त्मना वहन्तः, दुरः वि ऋण्वन्, दृशीके स्वः विश्वे नवन्त ॥

५१-५२ पूर्वीः मनीषा वनेम । सुशोकः अर्यः अग्निः विश्वानि अश्याः। दैव्यानि व्रता चिकित्वान् मानुषस्य जनस्य जन्म आ (जानन्) ॥

५३-५४ यः अपां गर्भः, वनानां गर्भः, स्थातां चरथां च गर्भः , अस्मै दुरोणे अद्रौ चित् अन्तः। अमृतः स्वाधीः। विश्वः विशां न ॥

५५-५६ सः हि अग्निः क्षपावान्, रयीणां दाशत्, यः अस्मै सूक्तैः अरं (करोति)। हे चिकित्वः ! (त्वं) देवानां जन्म, मर्तान् च विद्वान्, एता भूम नि पाहि ॥

४७-४८ तेरे इन नियमोंको कोई नहीं तोड सकता, क्योंकि तू इन मानवोंके लिये सहायता करता है। वह तुम्हारा पराक्रमही है कि जो (शत्रुका) वध तुमने किया और साधारण मानवोंसे युक्त होकर दुष्टोंको भी भगा दिया ॥

४९-५० उषाके प्रियकरके समान तेजस्वी सबको जाननेवाला (अग्नि) इस (कर्मकर्ता) को जाने। स्वयं (प्रकाशको फैलानेवाले (किरणोंने) सब द्वार खोल दिये और सूर्यके दर्शनके समय सभी आनन्दसे स्तुति करने लगे ॥

५१-५२ हम पूर्व (अर्थात् अपूर्व उत्तम) स्थान बुद्धिकी वृद्धिसे प्राप्त करेंगे। यह तेजस्वी स्वामी अग्नि सबको स्वाधीन कर लेता है। दिव्य व्रतोंको यह जानता है, और मनुष्य प्राणीके जन्मका (भी ज्ञान इसको है) ॥

५३-५४ यह (अग्नि) जलोंके मध्यमें, वनोंके मध्यमें, स्थावरों और जंगलोंके मध्यमें है, इसके लिये घरमें अथवा पर्वतके बीचमें (हवि अर्पण करते हैं), यह अमर देव (सबके लिये) उत्तम ध्यान करनेयोग्य है। जैसा सब (प्रजाको बसानेवाला राजा) प्रजाजनोंका आधार देता है ॥

५५-५६ यह अग्नि रात्रीमें (प्रज्वलित होकर) धनोंका (उसको) दान करता है कि, जो इसको सूक्तोंसे अलंकृत करता है। हे ज्ञानी (अग्नि देव) ! तू देवोंके जन्मों और मानवों-(के जीवनों) को जानता है, इन भूप्रदेशोंकी सुरक्षा कर ॥

वर्धान्यं पूर्वीः क्षपो विरूपाः स्थातुश्च रथमृतप्रवीतम् ७ ५७
अराधि होता स्व१र्निषत्तः कृण्वन् विश्वान्यपांसि सत्या ८ ५८
गोषु प्रशस्तिं वनेषु धिषे भरन्त विश्वे बलिं स्वर्णः ९ ५९
वि त्वा नरः पुरुत्रा सपर्यन् पितुर्न जिव्रेर्वि वेदो भरन्त १० ६०
साधुर्न गृध्नुरस्तेव शूरो यातेव भीमस्त्वेषः समत्सु ११ ६१

(७)

(ऋ० १।७१) पराशरः शाक्त्यः । अग्निः । त्रिष्टुप् ।

उप प्र जिन्वन्नुशतीरुशन्तं पतिं न नित्यं जनयः सनीळाः ।
स्वसारः श्यावीमरुषीमजुषूञ्चित्रमुच्छन्तीमुषसं न गावः १ ६२
वीळु चिद् दळ्हा पितरो न उक्थैरद्रिं रुजन्नङ्गिरसो रवेण ।
चक्रुर्दिवो बृहतो गातुमस्मे अहः स्वर्विविदुः केतुमुस्राः २ ६३

५७-५८ पूर्वीः क्षपः विरूपाः यं वर्धान् । स्थातुः रथं च ऋतप्रवीतम् । स्वः निषत्तः होता अराधि, विश्वानि अपांसि सत्या कृण्वन् ॥

५९-६० वनेषु गोषु प्रशस्तिं धिषे । विश्वे नः स्वः बलिं भरन्त । त्वा नरः पुरुत्रा वि सपर्यन् । जिव्रः पितुः न वेदः वि भरन्त ॥

६१ साधुः नः गृध्नुः अस्ता इव शूरः, याता इव भीमः, समत्सु त्वेषः ॥

६२ उशतीः सनीळाः जनयः उशन्तं नित्यं पतिं न उप प्र जिन्वन् । श्यावीं उच्छन्तीं अरुषीं उषसं न गावः, चित्रं स्वसारः अजुषन् ॥

६३ नः अङ्गिरसः पितरः उक्थैः वीळु चित् दळ्हा अद्रिं रवेण रुजन् । बृहतः दिवः गातुं अस्मे चक्रुः, स्वः अहः केतुं उस्राः विविदुः ॥

५७-५८ पूर्व समयकी रात्रियोंसे अनेक रूपोंमें इसकी वृद्धि हुई है। स्थावरों और जंगमोंमें (भी) सत्य नियमों द्वारा (इसका) वर्धन हुआ है । अपने निज तेजमें (प्रकाशित) रहनेवाला (देवोंको) बुलानेवाला (यह अग्नि) हमारे द्वारा पूजित हुआ है । सब प्रकारके पुरुषार्थोंको यह सत्य करता है॥

५९-६० तू वनों और गौओंकी प्रशंसा (हमसे) करवाता है। सब हम (तुम्हारे लिये) आत्मसर्वस्वका बलि अर्पण करते है । तेरी पूजा सब मानव अनेक स्थानोंमें करते हैं । जैसा वृद्ध पिताका (धन पुत्रको मिलता है तुझसे) उनको धन मिलता है ।

६१ वह साधु सत्पुरुष जैसा सत्कारयोग्य है, शूरके समान अस्त्र चलाता है, हमला करनेवालेके समान भयंकर है, और युद्धोंमें उत्साही है ॥

६२ (पतिकी) इच्छा करनेवाली एक घरमें रहनेवाली स्त्रियाँ (पत्नी समागमकी) इच्छा करनेवाले, सदा साथ रहनेवाले पतिको जैसी संतुष्ट करती हैं । तथा श्यामवर्ण परन्तु अन्धकार दूर करनेवाली तेजस्वी उषाको (देखकर) जैसी गौवें (संतुष्ट होती हैं), वैसेही इस विलक्षण अग्निकी (हाथ जोडनेसे) बहिनें (अंगुलियां) सेवा करती हैं ॥

६३ हमारे अंगिरस पितरोंने मंत्रोंके शब्दोंके (बलसेही) बडे पर्वतपरके सुदृढ कीले तोड दिये । बडे द्युलोकको जानेवाला मार्ग हमारे लिये बनाया । तथा प्रकाश, दिन, किरण और गौवें प्राप्त कीं ॥

दधन्नृतं धनयन्नस्य धीतिमादिदर्यो दिधिष्वो३ विभृत्राः ।
अतृष्यन्तीरपसो यन्त्यच्छा देवाञ्जन्म प्रयसा वर्धयन्तीः ३ ६४

मथीद् यदीं विभृतो मातरिश्वा गृहेगृहे श्येतो जेन्यो भूत् ।
आदीं राज्ञे न सहीयसे सचा सन्ना दूत्यं१ भृगवाणो विवाय ४ ६५

महे यत् पित्र ईं रसं दिवे करव त्सरत् पृशन्यश्चिकित्वान् ।
सृजदस्ता धृषता दिद्युमस्मै स्वायां देवो दुहितरि त्विषिं धात् ५ ६६

स्व आ यस्तुभ्यं दम आ विभाति नमो वा दाशादुशतो अनु द्यून्
वर्धो अग्ने वयो अस्य द्विबर्हा यासद् राया सरथं यं जुनासि ६ ६७

अग्निं विश्वा अभि पृक्षः सचन्ते समुद्रं न स्रवतः सप्त यह्वीः ।
न जामिभिर्वि चिकिते वयो नो विदा देवेषु प्रमतिं चिकित्वान् ७ ६८

---

६४ ऋतं दधन्, अस्य धीतिं धनयन् आत् इत् अर्यः दिधिष्वः विभृत्राः अतृष्यन्तीः अपसः प्रयसा देवान् जन्म वर्धयन्तीः अच्छ यन्ति ॥

६५ मातरिश्वा ईं यत् मथीत्, विभृतः, श्येतः गृहे गृहे जेन्यः भूत् । सचा सन् सहीयसे राज्ञे न आत् ईं भृगवाणः दूत्यं आ विवाय ।

६६ महे पित्रे दिवे ईं रसं यत् कः पृशन्यः चिकित्वान् अव त्सरत् । अस्ता धृषता अस्मै दिद्युं सृजत् । देवः स्वायां दुहितरि त्विषिं धात् ॥

६७ तुभ्यं स्वे दमे यः आ विभाति, अनु द्यून् उशतः नमः वा दाशात् । हे अग्ने ! अस्य द्विबर्हाः वयः वर्धो, सरथं यं जुनासि राया यासत् ॥

६८ विश्वाः पृक्षः अग्निं अभि सचन्ते, स्रवतः सप्त यह्वीः समुद्रं न । जामिभिः नः वयः न वि चिकिते, देवेषु प्रमतिं चिकित्वान् विदाः ॥

६४ सत्यका धारण करनेवालोंने इसकी धारक शक्तिका धारण किया । पश्चात् स्वामिनीरूप धारण करनेवाली, पोषण करनेवाली, तृष्णारहित कर्मशील अन्नदानसे देवोंको और जन्म (लेनेवाले मानवोंको) बढानेवाली (प्रजायें इस अग्निके) पास जमा होती हैं ॥

६५ वायुने जब इस (अग्नि) को मथकर प्रकट किया, तब यह श्वेत प्रकाश (प्रकट करता हुआ) घर घरमें विजयी हुआ है । साथ रहकर बलिष्ठ राजाके लिये (सहायक होनेके) समान, प्रकट होनेके पश्चात् भृगु ऋषिपर प्रेम करनेवाले (इस अग्निने उसकी सहायतार्थ) दूतकर्म किया ॥

६६ महान् पितृभूत द्युलोकको (अर्पण करनेके लिये तैयार किये) इस (सोम) रसको कौन हमला करनेवाला (शत्रु इस अग्निके प्रभावको) जानता हुआ नीचे गिरा सकता है ? अस्त्र फेंकनेवाले वीरने इस (शत्रु) पर तेजस्वी अस्त्र (जब) फेंका, तब इस (सूर्य देव) ने अपनीही पुत्री (उषा) में तेज रख दिया ॥

६७ तुम्हारे लिये अपने स्थानमें जो प्रकाशता है, और प्रतिदिन (तुम्हारा हित) चाहनेवाले (अग्निके लिये) जो हवि देता है, हे अग्ने ! दोनों स्थानोंमें वृद्धिंगत होता हुआ तू इस भक्तकी आयु बढा । जिसके रथमें सहायतार्थ तू रहता है, उसको धन देता है ॥

६८ सब अन्न अग्निकेही पास आते हैं, जैसी बहनेवाली सात नदियां समुद्रको जा मिलती हैं । भाइयोंको भी हमारी आयुका पता नहीं है, (पर तू) देवोंके मनमें जो है उसको भी अच्छी तरह जानता है ॥

आ यदिषे नृपतिं तेज आनट् शुचि रेतो निषिक्तं द्यौरभीके ।
अग्निः शर्धमनवद्यं युवानं स्वाध्यं जनयत् सूदयच्च ८ ६९
मनो न योऽध्वनः सद्य एत्येकः सत्रा सूरो वस्व ईशे
राजाना मित्रावरुणा सुपाणी गोषु प्रियममृतं रक्षमाणा ९ ७०
मा नो अग्ने सख्या पित्र्याणि प्र मर्षिष्ठा अभि विदुष्कविः सन् ।
नभो न रूपं जरिमा मिनाति पुरा तस्या अभिशस्तेरधीहि १० ७१

(८) [ऋ १।७२]

नि काव्या वेधसः शश्वतस्कर्हस्ते दधानो नर्या पुरूणि ।
अग्निर्भुवद् रयिपती रयीणां सत्रा चक्राणो अमृतानि विश्वा १ ७२
अस्मे वत्सं परि षन्तं न विन्दन्निच्छन्तो विश्वे अमृता अमूराः ।
श्रमयुवः पदव्यो धियंधास्तस्थुः पदे परमे चार्वग्नेः २ ७३

---

६९ यत् शुचि द्यौः तेज , नृपतिं इषे आ आनट्, अभीके निषिक्तं रेत अग्निः अजनयत्, शर्धं अनवद्यं युवानं स्वाध्य सूदयत् च ॥

७० यः एक सूरः अध्वन सद्य एति, मन न (स) वस्व सत्रा ईशे । सुपाणी राजाना मित्रावरुणा गोषु प्रिय अमृत रक्षमाणा ॥

७१ हे अग्ने ! पित्र्याणि सख्या मा प्र मर्षिष्ठा । कवि सन् अभि विदुः । नभो न रूपं जरिमा मिनाति । अभि शस्तेः तस्याः पुरा अधीहि ।

७२ शश्वतः वेधसः काव्या, नर्या पुरूणि हस्ते दधान नि कः । अग्निः विश्वा अमृतानि सत्रा चक्राण रयीणां रयिपतिः भुवद् ॥

७३ अस्मे परि सन्तं वत्सं इच्छन्तः विश्वे अमूराः अमृता न विन्दन् । श्रमयुवः पदव्यः धियंधाः अग्नेः परमे पदे चारु तस्थुः ॥

६९ जब शुद्ध दिव्य तेज, मनुष्योंके स्वामी (अग्नि)के पास अन्नके लाभके लिये प्रकाशित हुआ, तब पासही रहे अपने वीर्यको अग्निने फैलाया, उस समय सांघिक बल अनिंद्य तारुण्य और उत्तम धारक शक्ति (यह सब) परिपक्व हुआ ॥

७० जो एकही (अग्निरूपी) सूर्य मार्गके पार सत्वरही जाता है, मन जैसा (वेगवान् वह) साथही साथ धनपर अपना अधिकार जमाता है। उत्तम हाथवाले दोनों राजा मित्र और वरुण गौओंमें जो प्रिय अमृत (दूध है उसकी) सुरक्षा करते हैं ॥

७१ हे अग्नि देव ! पितारोंसे आये हमारे सख्य भावको तू विनष्ट न कर । तू ज्ञाता यह सब जानता है । (मेघ) जैसे आकाशमें आकर रूप (दर्शानेवाले प्रकाशको नष्ट करते हैं) वैसेही बुढापा (शरीरकी सुंदरताको) नष्ट करता है । अतः विपत्ति (हमारे पर) आनेके पूर्वही उसका नाश कर ॥

७२ शाश्वत विधाताके संबंधके काव्य, मानवोंके लिये हितकर बहुतसे धन अपने हाथमें रखनेवाला (यह अग्नि अपने पास आकर्षित) करता है। यह अग्नि सब अमर (कर्तव्यों) को साथ साथ करता हुआ, सब वैभवोंका स्वामी होगया है ॥

७३ हमारे (हितके) लिये, यहां रहनेवाले इस वत्स (अग्नि) की (खोज करनेकी) इच्छा करनेवाले अमूढ (ज्ञानी) अमर देव भी (इसे) न प्राप्त कर सके । श्रम करनेवाले अग्निकी खोज करनेवाले वे बुद्धिमान् लोग (अन्तमें उसके) परम पदको सुन्दरतासे पहुंच गये ॥

तिस्रो यदग्ने शरदस्त्वामिच्छुचिं घृतेन शुचयः सपर्यान् ।
नामानि चिद् दधिरे यज्ञियान्यसूदयन्त तन्व१ः सुजाताः ३ ७४
आ रोदसी बृहती वेविदानाः प्र रुद्रिया जभ्रिरे यज्ञियासः ।
विदन्मर्तो नेमधिता चिकित्वानग्निं पदे परमे तस्थिवांसम् ४ ७५
संजानाना उप सीदन्नभिज्ञु पत्नीवन्तो नमस्यं नमस्यन् ।
रिरिक्वांसस्तन्वः कृण्वत स्वाः सखा सख्युर्निमिषि रक्षमाणाः ५ ७६
त्रिः सप्त यद् गुह्यानि त्वे इत् पदाविदन्निहिता यज्ञियासः ।
तेभी रक्षन्ते अमृतं सजोषाः पशूञ्च स्थातॄञ्चरथं च पाहि ६ ७७
विद्वाँ अग्ने वयुनानि क्षितीनां व्यानुषक्छुरुधो जीवसे धाः ।
अन्तर्विद्वाँ अध्वनो देवयानानतन्द्रो दूतो अभवो हविर्वाट् ७ ७८
स्वाध्यो दिव आ सप्त यह्वी रायो दुरो व्यृतज्ञा अजानन् ।
विदद्गव्यं सरमा दृळ्हमूर्वं येना नु कं मानुषी भोजते विट् ८ ७९

७४ हे अग्ने ! शुचयः शुचिं त्वां इत् तिस्रः शरदः घृतेन यत् सपर्यान् । सुजाताः तन्वः सूदयन्तः यज्ञियानि नामानि चित् दधिरे ॥

७५ बृहतीः रोदसी आ वेविदानाः, यज्ञियासः रुद्रिया प्र जभ्रिरे । नेमधिता मर्तः परमे पदे तस्थिवांसं अग्निं चिकित्वान् विदत् ॥

७६ संजानानाः उप सीदन्, पत्नीवन्तः नमस्यं अभिज्ञु नमस्यन् । सख्युः निमिषि रक्षमाणाः सखा स्वाः तन्वः रिरिक्वांसः कृण्वत ॥

७७ त्रिः सप्त गुह्यानि यत् पदा त्वे इत् निहिताः, यज्ञियासः अविदन् । तेभिः अमृतं रक्षन्ते । सजोषाः पशून् च स्थातॄन् चरथं च पाहि ॥

७८ हे अग्ने ! वयुनानि विद्वान् क्षितीनां जीवसे शुरुधः आनुषक् वि धाः । हविर्वाट् अध्वनः देवयानान् अन्तर्विद्वान् अतन्द्रः दूतः अभवः ॥

७९ स्वाध्यः सप्त यह्वीः दिवः आ (प्रवहान्ति) । ऋतज्ञाः रायः दुरः वि अजानन् । गव्यं दृळहं ऊर्वं सरमा विदत् । येन नु मानुषी विट् कं भोजते ॥

७४ हे अग्ने । पवित्र होकर (याजकोंने) तुझ पवित्र (देव) की तीन वर्षतक जब घृतसे पूजा की । तब उत्तम कुलीन उन (याजकों)के (स्थूल-सूक्ष्म-कारण) शरीर पवित्र हुए और उनको पवित्र नाम (यश) भी प्राप्त हुए ॥

७५ बडे द्युलोक और भूलोकके अन्दर खोज करते करते उन याजकोंको रुद्रके (अग्निके सामर्थ्यका) लाभ हुआ । युद्धमें रहनेवाला मानव परम पदमें ठहरनेवाले अग्निको जानकर प्राप्त करनेमें (समर्थ हुआ) ॥

७६ (वे) जानकर तेरे समीप गये, पत्नियोंके समेत पूजनीय (अग्नि) को घुटने टेक कर नमन करते रहे । एक मित्रको निद्रा लगते ही जैसा दूसरा मित्र रक्षा करता है वैसी रक्षासे सुरक्षित हुए ये (याजक) मित्र अपने शरीरोंको (पापोंसे रहित) पवित्र करने लगे ॥

७७ जो तीन गुणा सात (अर्थात् इक्कीस) गुह्य तेरे स्थानमें रखे हैं, उनको यज्ञ करनेवालोंने जान लिया । उनसे अमरत्वकी सुरक्षा वे करते हैं । सबपर प्रीति करनेवाला तू हमारे पशुओं और स्थावर जंगम सबका रक्षण कर ॥

७८ हे अग्ने ! (सब मनुष्योंके) विचार और आचार जानकर तुम मानवोंके दीर्घजीवनके लिये क्षुधाके कष्ट दूर करनेके हेतुसे सतत यत्नवान् होते हो । तुम अन्न पहुंचाते हो, देवोंके गुप्त मार्गोंको जानते हो अतः तुम (उनका) निरलस दूत हुवे हो ॥

७९ शुभकर्म (जहां होते हैं) ऐसी सात नदियाँ द्युलोकसे बह रही हैं । सत्य जाननेवालोंने संपत्तिके द्वार (खोलनेकी रीति) जान ली है । गौओंको रखनेका सुदृढ कीला सरमाने जान लिया । जिससे मानवी प्रजा सुखसे भोजन करती है ॥

आ ये विश्वा स्वपत्यानि तस्थुः कृण्वानासो अमृतत्वाय गातुम् ।
मह्ना महद्भिः पृथिवी वि तस्थे माता पुत्रैरदितिर्धायसे वेः ९ ८०
अधि श्रियं नि दधुश्चारुमस्मिन् दिवो यदक्षी अमृता अकृण्वन् ।
अध क्षरन्ति सिन्धवो न सृष्टाः प्र नीचीरग्ने अरुषीरजानन् १० ८१

(९) [ऋ. १।७३]

रयिर्न यः पितृवित्तो वयोधाः सुप्रणीतिश्चिकितुषो न शासुः ।
स्योनशीरतिथिर्न प्रीणानो होतेव सद्म विधतो वि तारीत् १ ८२
देवो न यः सविता सत्यमन्मा क्रत्वा निपाति वृजनानि विश्वा ।
पुरुप्रशस्तो अमतिर्न सत्य आत्मेव शेवो दिधिषाय्यो भूत् २ ८३
देवो न यः पृथिवीं विश्वधाया उपक्षेति हितमित्रो न राजा ।
पुरःसदः शर्मसदो न वीरा अनवद्या पतिजुष्टेव नारी ३ ८४

८० ये अमृतत्वाय गातुं कृण्वानासः, विश्वा स्वपत्यानि आ तस्थुः । महद्भिः पुत्रैः माता अदितिः पृथिवी धायसे मह्ना वि तस्थे, वेः ॥

८१ दिवः अमृताः यत् अक्षी अकृण्वन्, अस्मिन् चारुं श्रियं अधि नि दधुः । अध सृष्टाः सिन्धवः न नीचीः अरुषी क्षरन्ति । हे अग्ने ! प्र अजानन् ॥

८२ पितृवित्तः रयिः न यः वयोधाः । चिकितुषः न शासुः सुप्रणीतिः। स्योनशीः अतिथिः न प्रीणानः, विधतः सद्म, होता इव, वि तारीत् ॥

८३ देवः न सविता यः सत्यमन्मा, क्रत्वा विश्वा वृजनानि निपाति । पुरुप्रशस्तः, अमतिः न सत्यः आत्मा इव शेवः दिधिषाय्यः भूत् ॥

८४ देवः न यः विश्वधायाः, हितमित्रः न राजा, पृथिवीं उपक्षेति । पुरःसदः शर्मसदः न वीराः, अनवद्या पतिजुष्टा इव नारी ॥

*

८० जो अमरत्वकी प्राप्तिके लिये मार्ग (तैयार करनेके इच्छुक) हैं, वे उत्तम कर्मोंका अनुष्ठान करते हैं। बडे वीर पुत्रोंसे माता अदिति पृथ्वी (सबका) धारण पोषण करनेके लिये अपनी महिमासेही बडी विस्तृत हुई है। (वहीं, हे अग्नि ! तू) हविका सेवन करता है ॥

८१ द्युलोकसे अमर देवोंने जब दो आंख बनाये, तब उन्होंने इस (अग्नि) में सुंदर शोभादायी तेज रख दिया। पश्चात् निम्न-गतिसे जानेवाली नदियोंके समान उससे तेजस्वी दीप्तियां फैलने लगीं। हे अग्ने ! उनसे (तुम्हारा) ज्ञान सबको हुआ ॥

८२ पितासे प्राप्त हुए धनके समान, यह (अग्नि) अन्नकी वृद्धि करनेवाला है। ज्ञानीके उपदेशके समान वह उत्तम मार्ग बताता है। (उत्तम अतिथि-)-सत्कारसे सन्तुष्ट हुए अतिथिके समान (यह) सुखदायी है, (यह अग्नि) यज्ञकर्ताके घरकी, हवनकर्ताके समान, वृद्धि करता है ॥

८३ सविता देवके समान जो सत्य (निष्ठ) बुद्धियुक्त है, जो अपने कर्तृत्वसे सबको पापोंसे बचाता है। जो अनेकोंके द्वारा प्रशंसित है, प्रगति करनेवालेके समान सत्य (यशवाला है), आत्माके समान सेवा करनेयोग्य, और सबको आश्रय देनेवाला है ॥

८४ (सूर्य) देवके समान जो विश्वका धारक है, और हित करनेवाले (प्रजाके) मित्र राजाके समान, जो पृथ्वीपर रहता है। (युद्धमें) अग्रगामी होनेवाले तथा घरमें (सुरक्षार्थ) रहनेवाले वीरोंके समान, तथा निष्पाप पतिव्रता स्त्रीके समान (यह अग्नि पवित्र है) ॥

तं त्वा नरो दम आ नित्यमिद्धमग्ने सचन्त क्षितिषु ध्रुवासु ।
अधि द्युम्नं नि दधुर्भूर्यस्मिन् भवा विश्वायुर्धरुणो रयीणाम् ४ ८५
वि पृक्षो अग्ने मघवानो अश्युर्वि सूरयो ददतो विश्वमायुः ।
सनेम वाजं समिथेष्वर्यो भागं देवेषु श्रवसे दधानाः ५ ८६
ऋतस्य हि धेनवो वावशानाः स्मदूध्नीः पीपयन्त द्युभक्ताः ।
परावतः सुमतिं भिक्षमाणा वि सिन्धवः समया सस्रुरद्रिम् ६ ८७
त्वे अग्ने सुमतिं भिक्षमाणा दिवि श्रवो दधिरे यज्ञियासः ।
नक्ता च चक्रुरुषसा विरूपे कृष्णं च वर्णमरुणं च सं धुः । ७ ८८
यान् राये मर्तान्त्सुषूदो अग्ने ते स्याम मघवानो वयं च ।
छायेव विश्वं भुवनं सिसक्ष्यापप्रिवान् रोदसी अन्तरिक्षम् ८ ८९
अर्वद्भिरग्ने अर्वतो नृभिर्नॄन् वीरैर्वीरान् वनुयामा त्वोताः ।
ईशानासः पितृवित्तस्य रायो वि सूरयः शतहिमा नो अश्युः ९ ९०

---

८५ हे अग्ने ! तं त्वा नरः ध्रुवासु क्षितिषु दमे नित्यं इद्धं आ सचन्त । अस्मिन् भूरि द्युम्नं अधि नि दधुः । विश्वायुः रयीणां धरुणः भव ॥

८६ हे अग्ने ! मघवानः पृक्षः वि अश्युः । सूरयः ददतः विश्वं आयुः वि (अश्युः) । समिथेषु अर्यः वाजं सनेम । देवेषु श्रवसे भागं दधानाः ॥

८७ वावशानाः स्मदूध्नीः द्युभक्ताः ऋतस्य हि धेनवः पीपयन्त । सिन्धवः सुमतिं भिक्षमाणाः अद्रिं समया परावतः वि सस्रुः ॥

८८ हे अग्ने ! सुमतिं भिक्षमाणाः यज्ञियासः दिवि त्वे श्रवः दधिरे । विरूपे उषसा नक्ता च चक्रुः । कृष्णं च वर्णं अरुणं च सं धुः ॥

८९ हे अग्ने ! यान् मर्तान् राये सुषूदः ते वयं च मघवानः स्याम । रोदसी अन्तरिक्षं (च) आपप्रिवान्, विश्वं भुवनं छाया इव, सिसक्षि ॥

९० हे अग्ने ! त्वोताः अर्वद्भिः अर्वतः, नृभिः नॄन्, वीरैः वीरान् वनुयाम । पितृवित्तस्य रायः ईशानासः सूरयः नः शतहिमाः वि अश्युः ॥

८५ हे अग्ने ! उस तुझ (अग्नि) को स्थायी नागरिकोंके घरमें नित्य प्रदीप्त करके (तेरी) सेवा करते हैं । इस (अग्नि) में बहुतही तेजस्वी धन अर्पण किया है । (तू) सबका जीवन है, उनके वैभवोंका आश्रयदाता हो ॥

८६ हे अग्ने ! धनवान् (जो यज्ञ करनेवाले हों, उनको पर्याप्त) अन्न मिले । ज्ञानी दाताओंको पूर्ण आयु मिले । युद्धोंमें जानेवाले (हम सब वीर) बल प्राप्त करें । देवोंको अन्नके भागको (अर्पण करनेके लिये) हम धारण करें ॥

८७ (सेवा करनेकी) इच्छा करनेवाली, दूधसे भरे हुए दुग्धाशयवालीं, तेजस्वी (देव) की भक्ति करनेवाली, यज्ञके लिये रखी गौवें (सबको) दूध पिलाती हैं । (तेरी) शुभ बुद्धिकी इच्छा करनेवाली नदियाँ पर्वतके साथ साथ बडी दूरसे बहती हैं ॥

८८ हे अग्ने ! (तेरी) कृपाकी इच्छा करनेवाले पवित्र (विभूतियों) ने द्युलोकमें तेरे कारणही यश प्राप्त किया । विभिन्न रूपवाली उषा और रात्रि निर्माण की । लाल और काला रंग (उनमें) धारण किया ॥

८९ हे अग्ने ! जिन मानवोंको वैभवके लिये (तुमने) सिद्ध किया, वे हम सब धनवान् बन जायं । द्युलोक और भूलोक (ये दो और) अन्तरिक्षको तुमने (प्रकाशसे) भर दिया है, सब भुवनको, छायाके समान, साथ देते हो ॥

९० हे अग्ने ! तेरे द्वारा सुरक्षित (हुए हम) अपने घोडोंसे (शत्रुके) घोडोंको, अपने नेताओंसे (शत्रुके) नेताओंको, अपने वीरोंसे (शत्रुके) वीरोंको पराभूत करेंगे । पैतृक धनके स्वामी होकर हमारे विद्वान् (वीर) सौ वर्ष (की दीर्घ आयु) प्राप्त करें ॥

एता ते अग्न उचथानि वेधो जुष्टानि सन्तु मनसे हृदे च।
शकेम रायः सुधुरो यमं तेऽधि श्रवो देवभक्तं दधानाः १० ९१

(१०) सोमः

(ऋ० ९।९७) ३१—४४ पराशरः शाक्त्यः। पवमानः सोमः। त्रिष्टुप्।

प्र ते धारा मधुमतीरसृग्रन्वारान्यत्पूतो अत्येष्यव्यान्।
पवमान पवसे धाम गोनां जज्ञानः सूर्यमपिन्वो अर्कैः ३१ ९२
कनिक्रददनु पन्थामृतस्य शुक्रो वि भास्यमृतस्य धाम।
स इन्द्राय पवसे मत्सरवान्हिन्वानो वाचं मतिभिः कवीनाम् ३२ ९३
दिव्यः सुपर्णोऽव चक्षि सोम पिन्वन्धाराः कर्मणा देववीतौ।
एन्दो विश कलशं सोमधानं क्रन्दन्निहि सूर्यस्योप रश्मिम् ३३ ९४
तिस्रो वाच ईरयति प्र वह्निर्ऋतस्य धीतिं ब्रह्मणो मनीषाम्।
गावो यन्ति गोपतिं पृच्छमानाः सोमं यन्ति मतयो वावशानाः ३४ ९५

---

९१ हे वेधः अग्ने! एता उचथानि ते मनसे हृदे च जुष्टानि सन्तु। ते सुधुरः रायः यमं शकेम। देवभक्तं श्रवः अधि दधानाः॥

९२ ते मधुमतीः धाराः प्र असृग्रन्। यत् पूतः (त्वं) अव्यान् वारान् अति एषि। हे पवमान! गोनां धाम पवसे। जज्ञानः अर्कैः सूर्यं अपिन्वः॥

९३ (सः) ऋतस्य पन्थां अनु कनिक्रदत्। अमृतस्य धाम शुक्रः वि भासि। मत्सरवान् सः (त्वं) कवीनां मतिभिः वाचं हिन्वानः इन्द्राय पवसे॥

९४ हे सोम! दिव्यः सुपर्णः, देववीतौ कर्मणा धाराः पिन्वन्, अव चक्षि। हे इन्दो! सोमधानं कलशं आ विश। क्रन्दन् सूर्यस्य रश्मिं उप इहि॥

९५वह्निः तिस्रः वाचः प्र ईरयति। ऋतस्य धीतिं ब्रह्मणः मनीषां (च ईरयति)। गोपतिं सोमं गावः पृच्छमानाः यन्ति। वावशानाः मतयः (सोमं) यन्ति॥

९१ हे विधाता अग्निदेव! ये स्तोत्र तेरे मनको तथा हृदयको प्रिय लगें। (जिससे) तेरे उत्तम नेतृत्वके साथ मिलनेवाले धनोंको हम (प्राप्त करके उनका) नियमसे (उपयोग) कर सकेंगे। तथा देवके भक्तको कीर्ति प्राप्त कर देंगे॥

९२ (हे सोम!) तुझसे मीठी रसधाराएं बहने लगी हैं। जब छाना जाता (है तब तू) भेडीके बालोंकी (छाननीमेंसे) बहता है। हे सोम! तू गौओंके स्थानोंके पास पहुंचता है। प्रकट होकर अपने तेजसे सूर्यको भर देता है॥

९३ (वह सोम) यज्ञके मार्गके पास शब्द करता हुआ (जाता है)। अमृतके स्थानको स्वच्छ होकर चमकाता है। आनंदकारी प्रवाहोंको (फैलानेवाला) वह (तू) कवियोंकी बुद्धियोंसे वाणीको स्फूर्ति देता हुआ इन्द्रके लिये बहता है॥

९४ हे सोम! तू स्वर्गीय सुन्दर पत्तोंवाला (सोम) देवोंकी भक्तिके समय सत्कर्मके साथ रसधाराओंको प्रवाहित करता हुआ, नीचेकी ओर देख। हे सोम! सोमरस रखनेके कलशमें प्रविष्ट हो। शब्द करता हुआ सूर्य किरणके पास पहुंच॥

९५ (यज्ञका) अग्नि तीन प्रकारकी वाणियोंको प्रेरित करता है। वह सत्यका धारण और ब्रह्मका (स्तोत्रका) मनन (करता है)। गौओंके पति सोमके पास गौवें पूछती हुई जाती हैं। (वैसी) इच्छा करनेवाली (स्तोताओंकी) बुद्धियां (सोमके पास) पहुंचती हैं॥

सोमं गावो धेनवो वावशानाः सोमं विप्रा मतिभिः पृच्छमानाः ।
सोमः सुतः पूयते अज्यमानः सोमे अर्कास्त्रिष्टुभः सं नवन्ते ३५ ९६
एवा नः सोम परिषिच्यमान आ पवस्व पूयमानः स्वस्ति ।
इन्द्रमा विश बृहता रवेण वर्धया वाचं जनया पुरंधिम् ३६ ९७
आ जागृविर्विप्र ऋता मतीनां सोमः पुनानो असदच्चमूषु ।
सपन्ति यं मिथुनासो निकामा अध्वर्यवो रथिरासः सुहस्ताः ३७ ९८
स पुनान उप सूरे न धातोभे अप्रा रोदसी वि ष आवः ।
प्रिया चिद्यस्य प्रियसास ऊती स तू धनं कारिणे न प्र यंसत् ३८ ९९
स वर्धिता वर्धनः पूयमानः सोमो मीढ्वाँ अभि नो ज्योतिषाऽऽवीत् ।
येना नः पूर्वे पितरः पदज्ञाः स्वर्विदो अभि गा अद्रिमुष्णन् ३९ १००
अक्रान्त्समुद्रः प्रथमे विधर्मञ्जनयन्प्रजा भुवनस्य राजा ।
वृषा पवित्रे अधि सानो अव्ये बृहत्सोमो वावृधे सुवान इन्दुः ४० १०१

९६ धेनवः गावः सोमं वावशानाः । विप्राः मतिभिः सोमं पृच्छमानाः । सुतः सोमः अज्यमानः पूयते । त्रिष्टुभः अर्काः सोमे सं नवन्ते ॥

९७ हे सोम ! परिषिच्यमानः पूयमानः (त्वं) नः एव स्वस्ति आ पवस्व । बृहता रवेण इन्द्रं आ विश, वाचं वर्धय, पुरन्धिं जनय ॥

९८ जागृविः ऋता मतीनां विप्रः पुनानः सोमः चमूषु आ सदत् । मिथुनासः निकामाः रथिरासः सुहस्ताः अध्वर्यवः यं सपन्ति ॥

९९ पुनानः सः धाता, सूरे न उप, उभे रोदसी आ अप्राः, सः वि आवः । प्रिया चित् यस्य प्रियसासः ऊती । सः तु धनं कारिणे न प्र यंसत् ॥

१०० वर्धिता वर्धनः पूयमानः मीढ्वान् सः सोमः ज्योतिषा नः अभि आवीत् । येन पदज्ञाः स्वर्विदः नः पूर्वे पितरः गाः अद्रिं अभि उष्णन् ॥

१०१ समुद्रः राजा प्रथमे भुवनस्य विधर्मन् प्रजाः जनयन् अक्रान् । वृषा सुवानः इन्दुः सोमः अधि सानौ अव्ये पवित्रे बृहत् ववृधे ॥

९६ दूध देनेवाली गौवें सोमकी इच्छा करती हुई (जाती हैं) । ज्ञानी लोग अपनी बुद्धियोंसे सोमका वर्णन करते हैं । निचोडा हुआ सोमरस प्रवाहित होकर सबको पवित्र करता है। त्रिष्टुप् छन्दके स्तोत्र सोमके (वर्णनमें) संगत होते हैं ॥

९७ हे सोम ! सिंचित हुआ छाना जानेवाला सोम (वह तू) हमारे लिये कल्याण लानेवाला हो । बडे स्वरसे इन्द्रमें प्रविष्ट हो, स्तुतिको बढा, और बुद्धिको (उत्साहित) कर ॥

९८ जागनेवाला, सत्यभक्त बुद्धियोंसे युक्त ज्ञानी, छाना गया सोम पात्रोंमें भरा गया है । स्त्री पुरुष, शुभ इच्छा करते हुए त्वरासे जानेवाले उत्तम हाथवाले याजक जिस (सोम) के पास जाते हैं ॥

९९ पवित्र होनेवाले उस धारक (सोम) ने, सूर्यके समान, पास जाकर दोनों लोक भर दिये, और उसने (वे) प्रकट भी किये। प्रिय वस्तु जिससे अधिक प्रिय प्रतीत होती है (वह सोम सबकी) सुरक्षा करता है । वह, कारीगरको (वेतन देनेके समान) धन देता है ॥

१०० (सबका) संवर्धन करनेवाला, स्वयं संवर्धित होनेवाला, पवित्र होता हुआ, रसका सिंचन करनेवाला वह सोम अपने तेजसे हमारी सुरक्षा करता है। जिससे पदज्ञ आत्मज्ञानी हमारे प्राचीन पूर्वजोंने गौओंके लिये पर्वतको ढूंढ लिया॥

१०१ जलसे पूर्ण हुआ राजा (सोम) प्रथम भुवनके अन्दर विविध धर्मकी प्रजा उत्पन्न करता हुआ आक्रमण करने लगा। बलवर्धक चूनेवाला तेजस्वी सोम उच्च स्थानमें मेढीके ऊनके पवित्रपर बहुत बढने लगा ॥

महत्तत्सोमो महिषश्चकारापां यद्गर्भोऽवृणीत देवान् ।
अदधादिन्द्रे पवमान ओजोऽजनयत्सूर्ये ज्योतिरिन्दुः　४१　१०२
मत्सि वायुमिष्टये राधसे च मत्सि मित्रावरुणा पूयमानः ।
मत्सि शर्धो मारुतं मत्सि देवान्मत्सि द्यावापृथिवी देव सोम　४२　१०३
ऋजुः पवस्व वृजिनस्य हन्ताऽपामीवां बाधमानो मृधश्च ।
अभिश्रीणन्पयः पयसाभि गोनामिन्द्रस्य त्वं तव वयं सखायः　४३　१०४
मध्वः सूदं पवस्व वस्व उत्सं वीरं च न आ पवस्वा भगं च ।
स्वदस्वेन्द्राय पवमान इन्दो रयिं च न आ पवस्वा समुद्रात्　४४　१०५

१०२ महिषः सोमः महत् तत् चकार । यत् अपां गर्भः देवान् अवृणीत । पवमानः ओजः इन्द्रे अदधात् । इन्दुः सूर्ये ज्योतिः अजनयत् ॥

१०३ हे देव सोम ! त्वं वायुं इष्टये राधसे च मत्सि । पूयमानः मित्रावरुणौ मत्सि । मारुतं शर्धः मत्सि । देवान् मत्सि । द्यावापृथिवी मत्सि ॥

१०४ वृजिनस्य हन्ता, अमीवां मृधः च अप बाधमानः ऋजुः पवस्व । पयः गोनां पयसा अभिश्रीणन् अभि (गच्छसि)। इन्द्रस्य (सखा) त्वं, वयं तव सखायः ॥

१०५ मध्वः सूदं वस्वः उत्सं पवस्व । नः वीरं च भगं च आ पवस्व । हे इन्दो । पवमानः इन्द्राय स्वदस्व । समुद्रात् नः रयिं च आ पवस्व ॥

१०२ बडे शरीरवाला सोम बडा कर्म करने लगा । जो जलोंके बीचमें रहकर देवोंको वरने लगा । पवित्र सोमने बलको इन्द्रमें बढाया । सोमने सूर्यके अन्दर तेज प्रकट किया ॥

१०३ हे सोम ! तू वायुको इष्टसिद्धि और प्रसन्नताके लिये आनंदित करता है । पवित्र होता हुआ तू मित्र तथा वरुणको हृष्ट करता है। मरुतोंके संघको प्रसन्न करता है, देवोंको आनन्दयुक्त करता है तथा द्युलोक और पृथिवीको सन्तुष्ट करता है॥

१०४ कुटिलताका नाश करता हुआ, रोगों और शत्रुओंका निवारण करके, तू सरल छाना जा । (अपने) रसके साथ गौओंके दूधको मिश्रित करता हुआ आगे (चलता है) । इन्द्रका मित्र तू है, और हम तेरे मित्र है ॥

१०५ मधुर रसके परिपाकको, धनके हौज (की तरह), पवित्र कर । हमें वीर और धन दे । हे सोम ! पवित्र होता हुआ इन्द्रके लिये स्वादु बन । समुद्रसे हमें धन मिले ॥

अग्निका वर्णन

पराशर ऋषिके कुलमंत्र १०५ ऋग्वेदमें हैं । अन्य वेदोंमें इस ऋषिके इससे विभिन्न मन्त्र नहीं हैं। इन १०५ मंत्रोंमे ९१ मन्त्र अग्नि-देवताके हैं और शेष १४ मंत्र सोम देवताके हैं । इसलिये प्रथम अग्नि-देवताके मंत्रोंका मनन करते हैं । पराशरके इस मंत्रसंग्रहरूप काव्यमें उपमा, रूपक, तुलना आदि की इतनी भरमार है कि कई मंत्रोंमें तो प्रत्येकमें चार चार उपमाएं हैं और एकसे एक अधिक रोचक है। इतनी उपमाएं किसी अन्य ऋषिके काव्यमें नहीं हैं । देखिये इस अग्निकाव्यका पहिला मन्त्र कितना गम्भीर है-

चोर और भगवान्

१ ' गुहामें संचार करनेवाले, अन्नको अपने पास रखनेवाले, (गुहामें रहनेके कारण) अपने पासके अन्नसेही अपना गुजारा करनेवाले, पशुको (चुराकर पहाडकी गुहामें रहनेवाले) चोरको उत्साही बुद्धिमान् पुरुष (गौओंके और चोरके) पदचिन्होंको देख देखकर उनके अनुसन्धानसे (उसे) ढूंढकर (उसे प्राप्त करते हैं और वे) सब लोग उसे घेरकर (उसके) चारों ओर उसके पास पासही बैठते हैं, ताकि वह न भाग सके । (मन्त्र १-२)

इस मन्त्रकी उपमाका विचार ठीक तरह समझमें आनेके लिये निम्नलिखित भाव ध्यानमें रखिये- " एक चोरने किसीकी गौवें चुरा लीं और वह किसी पहाडकी गुहामें छिपकर बैठा है। किसीको पता नहीं कि वह कौन है और कहां रहता है।पश्चात् दूसरे दिन इष्टमित्र मिलनेपर चोरी होनेकी बातका विचार होता है और जो लोग पदचिन्होंसे पता लगानेमें समर्थ हैं वे आगे होते हैं और चोरके तथा गौओंके भूमिपर दिखाई देनेवाले पदचिन्होंसे

पता निकालते निकालते उस पर्वतके पास पहुंचते हैं कि जहां वह चोर रहता है और गौवें भी वहीं होती हैं। वह उस गुहामें दिनभर छिपा रहता है और अपने पासके अन्नपरही गुजारा करता है। उसकी खोज करनेवालोंके साथ शूरवीर भी रहते हैं और वे बडी सावधानतासे उस पहाडीमें जाते हैं, उस चोरको पकडते हैं और उसको बीचमें रखकर, उसको इधर उधर भागने दौडने नहीं देते और उसके चारों ओर वे वीर बैठ जाते हैं। यह वर्णन इस मन्त्रमें है।

यहां चोरको ढूंढकर निकालनेका विषय है। यह चोरकी उपमा ' ईश्वरको ढूंढ ढूंढकर निकालनेके लिये ' यहां लिखी है। मुख्य विषय ईश्वरको ढूंढनेका है, गौण विषय अग्निको ढूंढनेका है और इसके लिये उपमा गौवें चुरानेवाले चोरकी दी है। यह उपमा ईश्वरकी निगूढता, गुप्तता, छिपे रहनेका भाव अच्छी तरह बताती है। देखिये इसका ईश्वरपरक भाव-

ईश्वर-परक अर्थ

(हृदयकी) गुहामें रहनेवाले, (भक्तोंके) नमस्कारके साथ युक्त होनेवाले, (भक्तके) नमस्कारको स्वीकारनेवाले, (इन्द्रियरूप) पशुओंको (अपनी ओर आकृष्ट करनेवाले) चोर (जैसे सर्वत्र गुप्त छिपकर रहनेवाले ईश्वर) को (ढूंढनेके लिये) जोशीले धीर वीर (भक्त वेदके) पदोंके अनुसंधानसे चलते हैं, (उसे प्राप्त करते हैं और उपासना करनेके लिये) ये सब भक्तिरूप यज्ञ करनेवाले साधक साथ साथ बैठते हैं, (सांघिक उपासना करते हैं) । (१-२)

यह अर्थ स्पष्ट है और अधिक विवेचनकी इसके लिये कोई आवश्यकता नहीं है। अब इसी मंत्रका अग्निविषयक भाव देखिये—

अग्निविषयक अर्थ

(अरणियोंमें) गुप्त रहनेवाले, (इन्धनरूप) अन्नके साथ संयुक्त होनेवाले, (आहुतिरूप) अन्नको (देवोंतक) पहुंचानेवाले (अग्निको), पशुके साथ रहनेवाले चोरकी तरह, प्रेमसे परस्पर प्रीतिसे सेवा करनेवाले बुद्धिमान् लोग, (मन्त्रोंके) पदोंसे पता लगाते हैं (और उस अग्निको) प्राप्त भी करते हैं। (इस तरह अरणियोंमें गुप्त रहा अग्नि घर्षणसे प्रदीप्त होनेके पश्चात्) सब याजक (उस अग्निके) समीप (चारों ओर) बैठते हैं (और यज्ञ करते हैं) । (१-२)

अरणिमें अग्नि छिपा है, लकडीमें अग्नि रहता है, यही चोरका गुहामें छिपकर रहना है। अरणीही पर्वत है। उसके अन्दर गुप्त अग्नि है। परमेश्वर भी ऐसाही हरएक वस्तुमें है। सर्वत्र छिपा है। इन दोनोंकी खोज करनेवाले वेदवेत्ता विद्वान् होते हैं। वेदके पदोंसे वे उसे प्राप्त करते हैं और या तो उस अग्निसे यज्ञ करते हैं, अथवा सामुदायिक उपासना करते हैं। दोनोंका परिणाम जनताकी भलाईही है।

पाठक विचार करें और देखें कि इस मंत्रमें कितनी रहस्यमयी रीतिसे ज्ञान दिया है। ईश्वरके लिये ' चोर ' शब्दका प्रयोग बहुत सन्तोंके काव्योंमें भी है। अब दूसरा मंत्र देखिये—

भूमिपर स्वर्गधाम

२ 'देवोंने सत्यपालनके व्रतोंकी पालना की, बडी खोज की गई, जिससे भूमि स्वर्गके समान रमणीय बन गई । ' यह आशय **(देवाः ऋतस्य व्रतानि अनु गुः, (महती) परिष्टिः भुवत्, भूमिः द्यौः न (भुवत् ॥** मं. ३) इस मन्त्रभागका है। इस भूमिपर स्वर्गधाम स्थापन करनेका प्रयत्न वैदिक धर्म कर रहा है। इसके लिये ' (१) सत्यके व्रतका पालन, और (२) बडी खोज' ये दो बातें चाहिये। खोजका क्षेत्र संपूर्ण मानवजीवनभर है। सत्यमार्गकी भी खोज करनी चाहिये। खोज करना और जो सत्य मिलेगा उसका पालन करना, इसीसे भूमिपर स्वर्गधाम स्थापन किया जा सकता है। यह मंत्रभाग विशेष महत्त्वका है, इसलिये इसका अधिक विचार होनेकी आवश्यकता है—

' **ऋतं** ' का अर्थ= योग्य, ठीक, सत्य, खरा, पूज्य, सन्मान्य, तेजस्वी, प्रकाशमय, उदयको प्राप्त, यज्ञ, सूर्य, नियम, विधिनियम, निश्चित किये नियम, धर्मनियम, पवित्र नियम, पावन कर्म, दिव्य नियम, दिव्य सत्य, मुक्ति, जीवन, कर्मफल, सत्य भाषण, परमात्मा।

व्रतं= धर्मनियम, निश्चय, संकल्प, विश्वास, पद्धति, नियम, यज्ञ, आचार, योजना।

परिष्टिः = चारों ओर ढूंढना, खोज करना, ढूंढकर निकालना। घातपात, हिंसा।

बडा परिश्रम करके सत्यकी खोज करना, जब सत्यका पता लगे, तब उसका पालन करना और सत्यकी ही भक्ति करना। यह व्रत है और इसके पालनसेही इस भूमिपर स्वर्गधामकी

स्थापना हो सकती है, जो धर्मका साध्य है। सत्यके साथ अहिंसा, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह (अपने पास भोगसाधनोंका संग्रह अत्यधिक प्रमाणमें न करना), शुद्धता, संतोष, तप (शीतोष्णादि द्वन्द्व सहनेकी शक्ति), स्वाध्याय (ज्ञानकी प्राप्ति), ईश्वरभक्ति आदि गुणोंका भी संबंध है। अर्थात् इन सबकी पालना करना आवश्यकही है। सत्यकी पालना होने लगी तो क्रमशः इन सबकी पालना स्वयं हो जाती है। इसलिये सत्यकी महिमा विशेष है।

सत्य और ऋत ये एकही जीवनके दो भाग हैं। इनमें एक सचाई है और दूसरी सरलता है। सत्य और सरल मिलकर संपूर्ण सत्य होता है। यहां जिस सत्यकी पालनाका व्रत कहा है वह ' ऋत और सत्य ' मिलकर है। सचाई भी हो, ठीक भी हो, सरल भी हो, कुटिलता न हो, इस तरहके सत्यकी पालनाका भाव यहां है। केवल सत्य है, पर ठीक नहीं है, तो उसे छोड देना चाहिये। यहां ' ऋत ' पद है, जो इन सब भावोंके साथ प्रयुक्त हुआ है। केवल सत्यसे ऋत कई गुणा ऊंचा है, यह परमात्माका निज स्वरूप है। पाठक इसका विचार करें।

भूमिपर स्वर्गधामकी स्थापना करनेकी इच्छा है, तो सत्यका पालन अनिवार्य है, यह यहां बताया है।

२ ऋतस्य गर्भे योना सुजातं, पन्वा सुशिश्विं ई आपः वर्धयन्ति (मं. ४)— सत्यके मध्यमें उत्तम प्रकारसे प्रकट हुए, बढनेवाले, वर्णनके योग्य इसको कर्म बढाते हैं। यहां भी अग्नि, सोम, जीव तथा आत्माके वर्णन साथ साथ हैं। ' **अग्नि** '= यज्ञनिष्पादक अरणीके मध्यसे उत्तम प्रकार उत्पन्न हुए, (वेदमंत्रोंकी) स्तुतिके साथ उत्तम बालकके समान इस (अग्नि) को (यज्ञविषयक प्रशस्त) कर्म बढाते हैं। अरणिसे उत्पन्न हुए अग्निको प्रदीप्त करके हवनाग्निके रूपमें बढा देते हैं। ' **सोम** ' सोमवल्लीसे उत्पन्न, वर्णनयोग्य रसको जल बढा देते हैं। सोमरसमें जल मिला देते हैं। ' **जीव** '= गार्हपत्यरूप यज्ञमें उत्पन्न, उत्तम शिशुरूपमें रहे (जीव) को जल आदि पदार्थ बढाते हैं, संवर्धन करते हैं, दुग्धादि देकर परिपुष्ट करते हैं। ' **आत्मा परमात्मा** '= विश्वके बीचमें प्रकट हुए आत्माको (वेद मंत्रोंकी) स्तुतिसे वर्णन करते हुए, अनेक शुभकर्मोंके द्वारा बढाते हैं॥ इस भूमिपर स्वर्गधामकी स्थापना करनेके लिये इस महत्तत्त्वरूप प्रकृतिके बीचमें जो आत्मा है, वह उत्तम रीतिसे प्रकट होकर, हरएकके अन्तःकरणमें सूर्यके समान स्पष्टरूपमें दिखाई देना चाहिये। इसीका वर्णन (वैदिक सूक्तोंमें) सर्वत्र हो रहा है और सब कर्म इसीकी बधाईके लिये अर्पण होने चाहिये।

३ क ईं वराते ? (मं. ६) = इसे कौन रोक सकता है ? इसे कौन प्रतिबंधमें रख सकता है ? इस मंत्रभागमें ' **वृ** ' धातुका प्रयोग है। ' **वृ** ' धातुका अर्थ ऐसा है— ' स्वीकार करना, पसंद करना, मांगना, याचना करना, ढांपना, आच्छादित करना, घेरना, चारों ओरसे घेरना, दूर रखना, प्रतिबंध करना, प्रेम करना, भूषित करना। ' चारों ओरसे घेरने, प्रतिबंधमें रखनेका भाव यहां है। इस (प्रभु) को कौन प्रतिबंधमें रख सकता है ?

४ यह प्रभु कैसा है ? (**पुष्टिः न रण्वा** । मं. ५) = पुष्टि जैसी रमणीय होती है, वैसाही यह पोषक भी है और रमणीय भी है। (**क्षितिः न पृथ्वी**) = भूमि जैसी विस्तृत है वैसाही यह बडा विस्तीर्ण है। (**गिरिः न भुज्म**) = पर्वत जैसा भोजन देता है वैसाही यह सबको भोजन देता है। (**क्षोदः न शंभु**) = जलके समान यह कल्याणकारी, जीवनदाता अथवा हितकर्ता है। (**अत्यः न अज्मन् सर्गप्रतक्तः**) = उत्तम दौडनेवाला घोडा जैसा ऊपर बैठनेवाले वीरसे प्रेरित होकर दौडता हुआ चला जाता है, बीचमें ठहरता नहीं, वैसाही यह प्रभु भक्तिके शब्दोंसे प्रेरित होकर भक्तके पास सहायतार्थ जाता है, बीचमें रुकता नहीं। (**सिन्धुः न क्षोदः**) = नदीमें जलप्रवाह भरनेसे जैसी वह दोनों ओरकी भूमिको काटती हुई आगे बढती है, उसी तरह यह प्रभु विरोधको हटाता है और भक्तकी सहायतार्थ उसके पास पहुंचता है। इसी तरह अग्निके विषयमें भी पाठक मननपूर्वक भाव समझें।

पुष्टि रमणीयता बढाती है इसलिये प्राप्त करनी चाहिये। पृथ्वी मनुष्यका कार्यक्षेत्र है वह मनुष्यके लिये दिन प्रतिदिन विस्तृत होता रहना चाहिये। पर्वतसे भोजन मिलता है यह इस मंत्रका तीसरा विधान है। पर्वतपर अनेक वृक्ष वनस्पति तथा औषधियां होती हैं, जो प्राणियोंके खानेमें आती हैं, पर्वतपर वृक्ष होते हैं और पर्वत मेघोंको आकर्षित करते हैं, जिससे वृष्टि होकर अन्नको उत्पन्न करती है, इस रीतिसे पर्वतसे अन्न होता

है। जल शान्तिसुख देता है यह इस मन्त्रमें चौथा विधान है, वृष्टिसे जल पृथ्वीपर आता है जो नदियों द्वारा पृथ्वीपर घूमता और शान्तिसुख देता है। नदी भरपूर भरकर दोनों ओरकी भूमिको काटती हुई आगे बढती है। यह जल अनेक प्रकारसे मानवोंका कल्याण करता है। घुडदौडका घोडा जैसा ऊपर बैठनेवाले वीरके द्वारा प्रेरित होकर युद्धभूमिमें दौडता जाता है, वैसाही वीर शत्रुपर हमला करे और विजय प्राप्त करे। पुष्टिकी प्राप्ति, कार्यक्षेत्रमें कर्तव्य पालन, अन्नका सुप्रबंध, जलका प्रबंध और वीरतासे शत्रुको भगा देना ये बातें मनुष्यको अपने रहनेके प्रबंधमें करनेयोग्य बातें हैं। इस मंत्रद्वारा यह सूचना यहां मिलती है।

अग्निदेवके ये कार्य हैं। इनके करनेमें अग्निको कोई रोक नहीं सकता। अग्नि अग्रणीही है। अग्रणी भी जनताके हित साधनके लिये राष्ट्रमें येही कर्म करें। यह यहां तात्पर्य है।

५ **सिन्धूनां जामिः**। (मं. ७)= नदियोंका यह संबंधीही है। अग्निसे जलकी उत्पत्ति हुई है ऐसा (**अग्नेरापः**) उपनिषदमें कहा है, अथवा मेघमें बिजली चमकती है और पश्चात् वृष्टि होती है इसलिये जलप्रवाहोंका अग्निके साथ घनिष्ट संबंध है। सिन्धुनदी बहिन है और अग्नि उसका भाई है। यही बहिनभाईका संबंध आगे बताया है। (**स्वस्रां भ्राता इव**)= बहिनोंका जैसा भाई हित करता है वैसा यह अग्नि सबका भरणपोषण करने द्वारा हितकारी है। अग्नि अन्नादिका पाक करके सबका पोषण करता है।

६ **इभ्यान् न राजा, वनानि अत्ति**। (मं. ७)= शत्रुओंको जैसा राजा नष्टभ्रष्ट करता है वैसाही यह अग्नि वनोंको, लकडियोंको खा जाता है। लकडियोंका जलाना अग्निका कार्य है, यह राजाका या क्षत्रियका कर्तव्य बतानेके लिये यहां कहा है। जैसा अग्नि लकडीको जलाकर भस्म कर देता है वैसा क्षत्रिय वीर राजा अपने शत्रुओंका नाश करे।

७ **वातजूतः अग्निः वना व्यस्थात्, पृथिव्या रोम दाति**। (मं. ८)= वायुसे प्रेरित होकर अग्नि जब वनोंपर हमला करता है, तब वह अग्नि भूमिके बालोंको (वृक्षोंको) मानो काटता है। यहां भी क्षत्रियका शत्रुको काटनाही सूचित किया है।

जिस तरह अग्नि वृक्षोंको जलाकर नष्ट करता है वैसा क्षत्रिय जनताके शत्रुका नाश करे और जनताको सुखी करे।

८ **क्रत्वा विशां चेतिष्ठः उषर्भुत्**। (मं. ९)= यह अपने परम पुरुषार्थसे प्रजाजनोंको विशेष चेतना या स्फुरण देनेवाला, है और स्वयं उषःकालमें जागता रहता है। उषःकालमें उठता है, अपना कर्तव्यकर्म करने लगता है और ऐसे कर्म करता है कि जिससे सब जनताको नवजीवनही प्राप्त हो जाय।

९ **सोमः न वेधाः, ऋत-प्रजातः, पशुः न शिश्वा, विभुः दुरे-भाः**:- सोम जैसा शरीरमें धारणशक्ति उत्पन्न करता है वैसाही यह समाजमें विलक्षण शक्ति निर्माण करता है, सत्यके लियेही यह उत्पन्न हुआ है अतः सत्यके लिये जीवन देता है, पशु जैसा यह फुर्तीला है, सर्वत्र प्रभाव उत्पन्न करता है और दूरतक अपना तेज फैलाता है। अग्नि-अग्रणी-नेताके ये गुण हैं। नेतामें ये गुण रहें और बढे।

१० **हंसः सीदन् न अप्सु श्वसिति**— हंस जैसा पानीमें रहता है वैसाही यह सबके हितसाधक कर्म करता हुआही जीवन धारण करता है।

यहां कण्व ऋषिका प्रथम सूक्त समाप्त हुआ है। अग्नि, नेता, अग्रणी, आत्मा, परमात्मापरक अर्थ देखकर इन मंत्रोंका पाठक अधिक मनन करें।

११ **रयिः न चित्रा**= जैसा धन प्राप्त करनेयोग्य है वैसाही यह देव सबके लिये प्राप्तव्य है, धन जैसा सुखदायी है वैसा यह देव अत्यंत सुख देता है। **सूरः न संदृक्**= ज्ञानीके समान यह देव सम्यक् द्रष्टा है, ज्ञानी बनकर हरएक मनुष्य सम्यक् द्रष्टा बने। **आयुः न प्राणः**= प्राण जैसी आयु देता है वैसाही यह जीवन देता है। **नित्यः न सूनुः**= पुत्र जैसा सदा सुख देता है वैसाही यह सुखदायी है।

यहां धन, विद्या, सम्यक् दृष्टि, दीर्घ आयु, प्राणका बल अर्थात् दीर्घ जीवन और उत्तम संतान ये प्राप्तव्य हैं ऐसा सूचित किया है। पाठक इस सूचनाकी ओर विशेष ध्यान दें।

१२ **तक्वा न भूर्णिः**= चपल घोडा जैसा (शत्रुका पराभव करके अन्न लाकर) पोषण करता है, चपल फुर्तीला पुत्र जैसा पोषण करता है, फुर्तीला वीर जैसा शत्रुका पराभव करके दिग्विजय करके पोषण करता है, वैसा यह नेता है। **पयः न धेनुः**= गौ जिस तरह दूध देती है, वैसाही यह पोषण करता है। **शुचिः विभावा**= शुद्ध पवित्र और

विशेष प्रभावी यह (अग्नि अथवा अग्रणी या नेता) पवित्र रहता हुआ विशेष प्रभावसे युक्त हो । **वना सिषक्ति** = वनोंका सेवन करता है, अग्निपक्षमें वनोंके पास जाना जलानेके लिये है, नेताके पक्षमें वनोंकी सेवा, वनोंकी रक्षा जनताके हितके लिये है। इस मंत्रमें प्रगति या फुर्तीलापन, भरणपोषण करना, गौके दूधकी विपुलता, पवित्रता, वैभव और प्रभाव और वनोंका प्रबंध ये नेताके द्वारा संवर्धनीय विषय कहे हैं।

१३ ओकः न रण्वः = अपने निजके घरके समान आनन्द देनेवाला वह है। अपना निजका घर कितना भी साधन-विरहित हुआ, तो भी वह परकीय साधनसंयुक्त घरकी अपेक्षासे अधिक सुख देता है, क्योंकि उसमें निज अधिकार रहता है। अपनेपनका सुख उसमें है। **पक्वः यवः न** = पका जौ जैसा सुखदायी, पुष्टिकारक और बलवर्धक रहता है वैसा यह नेता है। **क्षेमं दाधार** = यह कल्याण करता है। अपने घरके समान और पके धान्यके समान कल्याण करता है। अपना निज अधिकार (अपने देश आदिपर) रहना चाहिये और परिपक्व धान्य या फलके समान सब उपभोगके साधन परिपूर्ण रीतिसे मिलने चाहिये। तब मानवको सुख होगा।

१४ जनानां जेता = प्रजाजनोंमें विजयी जेता। प्रजाजनोंको वही सुख देता है जो विजयी वीर होता है। **ऋषिः न स्तुभ्वा** = ऋषिके समान वर्णनमें क्रान्तदर्शी। ऋषि वह है जो अपनी दिव्य-दृष्टिसे अदृश्य स्थितिका दर्शन करता है तथा जो स्तुतिके स्तोत्रमें विशेष भाव रखता है। ऐसा नेता हो अर्थात् वह अपूर्व मार्गका दर्शन करे और करावे। **विक्षु प्रशस्तः** = प्रजाजनोंमें प्रशंसित हो। शुभ गुणोंके कारण सब जनताकी प्रशंसा जिसको प्राप्त हो रही हो। जो विजेता है, तत्त्वदर्शी है, दिव्य-दृष्टिसे जो देख सकता हो वही जनतामें प्रशंसित होता है। **प्रीतः वाजी न वयः दधाति** = संतुष्ट, प्रसन्न हुए बलिष्ठ (वीर) के समान सबकी भलाईके लिये अपना जीवन, अपनी आयु, समर्पित करता है। प्रसन्नचित्त घोडेके समान (युद्धमें शत्रुका पराभव करके) अन्न प्राप्त कर देता है। इस मंत्रभागमें जो नेताके लिये उपदेश है वह हरएकको ध्यानमें धारण करनेयोग्य है।

१५ दुः-ओक-शोचिः नित्यः क्रतुः न, योनौ जाया इव विश्वस्मै अरम् । = शत्रुद्वारा जिसके तेजका नाश नहीं किया जा सकता ऐसे नित्य यज्ञ करनेवाले (वीर) के समान, तथा घरमें धर्मपत्नी जैसी सबके लिये पर्याप्त सुख देती है, वैसा सुख यह देता है। प्रबल तेजस्विताका धारण करना नित्य यज्ञ अर्थात् सत्कार-संगति-दानात्मक कर्म करना और गृहमाताके समान सबपर प्रेम करना ये तीन गुण यहां वर्णन किये हैं जो महनीय हैं।

१६ चित्रः श्वेतः न अभ्राट् = विलक्षण धवल कीर्तिमान् तेजस्वी (वीर) के समान शोभता है। **विक्षु रथः न रुक्मी, समत्सु त्वेषः** = प्रजाओंमें रमणीय महारथी वीरके समान तेजस्वी, और युद्धोंमें यशस्वी वीरके समान उत्साही होता है। यहां सूचित किया है कि वीर निष्कलंक हो, तेजस्वी हो महारथी और सब जनतामें प्रभावी हो और युद्धक्षेत्रोंमें बडे उत्साहके साथ लडकर विजय पानेवाला हो। अग्निके वर्णनके मिषसे ये वीरताके गुण यहां सूचित किये हैं जो जनतामें संवर्धित होने चाहिये।

१७. सृष्टा सेना इव अमं दधाति— शत्रुपर भेजी सेनाके समान बल धारण करता है। सेनाही राजाका और राष्ट्रका बल है। जब यह सेना शत्रुपर हमला करनेके लिये भेजी जाती है तब उसका बल अपूर्व होता है। **त्वेषप्रतीका दिद्युत् अस्तुः न**— जलनेवाली विद्युतके समान तेजस्वी अस्त्रके समान यह वीर शत्रुके लिये महाभयंकर होता है। राष्ट्रीय वीरोंमें यही बल बडा प्रभावी होना चाहिये।

१८. कनीनां जारः, जनीनां पतिः— (यह वीर) कन्याओंके लिये प्रिय और स्त्रियोंका पति होता है। कन्याएं पूर्वोक्त वीरको चाहती हैं कि अपना पति ऐसाही वीर हो। वह जिन प्रौढ स्त्रियोंका पति होता है वे अपने आपको धन्य मानती हैं और उसके समान वीर संतान पैदा करती हैं। यहां कन्याओंके मनमें कैसे विचार रहते हैं वह कहा है। कन्याएं मनमें इच्छा करती हैं कि ऐसा वीरही हमारा पति होवे और जिन स्त्रियोंका वह पति होता है, वे स्त्रियां अपने आपको कृतकृत्य मानती हैं, जिनसे वीर संतान उत्पन्न होती है।

यहां '**कनीनां जारः**' ये पद संदेह उत्पन्न करनेवाले है इनका शब्दार्थ 'कन्याओंका जार' है। पर ये सब मंत्र जितने इस समयतक आये हैं तथा आगे आनेवाले हैं वे संक्षिप्त हैं, अर्थात् बाहरसे अनेक पद लेकरही पूर्वापर संबंधसे इनका अर्थ करना चाहिये। इस कारण '**कनीनां जारः**' का अर्थ (**कनीनां** [एवं मनीषा वर्तते यत् एष वीरः अस्माकं]

जारः [प्रियकरः भवतु] इति)— कन्याओंकी ऐसी हार्दिक इच्छा होती है कि ऐसाही वीर हमारा प्रियकर बने। **'जार'** का अर्थ = प्रियकर, प्रीति करनेवाला है। अग्निका भी यही वर्णन है, अग्निको भी यही नाम है। अस्तु, इस कारण इस मंत्रके सच्चे भावमें वस्तुतः कोई बुराई नहीं है।

' यमः जातं, यमः जनित्वं '— बना हुआ और बननेवाला संपूर्ण विश्व यह यम (अग्नि) ही है। यही अग्नि विश्वके सब पदार्थोंका रूप लिये है। ऐसाही आत्मा और परमात्मा है। यह सदैक्यका सिद्धांत यहां कहा है। **'यम'** का अर्थ- नियामक, नियंत्रणकर्ता, स्वयंशासक। जो नियामक है वह ऐसा प्रभुत्व करनेवाला हो।

१९ अस्तं गावः न तं चराथ, वसत्या वयं इद्धं नक्षन्ते— घरके पास जैसी (शामके समय) गौवें (वापस आती हैं और विश्राम करती हैं) वैसे हम सब (हे प्रभो !) तुम्हारे पास चलकर आते हैं, तुम्हें प्राप्त करते हैं (और तुम्हारे में विश्राम पाते हैं)। हमारी बस्तीके अन्दर रहनेवाले हम सब लोग तुझे प्रदीप्त करके तुम्हारीही सेवा करते हैं। हम सब यज्ञ करते हैं और तुझ विश्वरूपकी सेवा करते हैं।

२० सिन्धुः न क्षोदः नीचीः प्र ऐनोत्, स्वर्दृशो गावः नक्षन्ते।— नदीके जलप्रवाह जैसे एकही नीचेकी दिशासे वेगसे जाते हैं, (वैसाही सब विश्व प्रभुकी प्राप्ति करनेकी दिशासे वेगसे दौड रहा है।) जैसे प्रकाशित हुए दर्शनीय (अग्निके पास) गौवें प्राप्त होती हैं। यज्ञकी संपूर्णता करनेके लिये अग्निके पास जैसी गौवें पहुंचती हैं, वैसेही हम सब प्रभुके यज्ञमें संमिलित होते हैं। उनका प्रतीकही यह यज्ञाग्नि है। जैसे लोग यज्ञमें संमिलित होते हैं, वैसेही प्रभुके विश्व व्यापक यज्ञके अंग बनकर सब मनुष्य विश्वयज्ञमें संमिलित हों।

यहां द्वितीय सूक्त समाप्त होता है। यहांका प्रत्येक मंत्र मानवोंके लिये विशेष सूचना दे रहा है, जिसका भाव हमने ऊपरकी टिप्पणीमें दर्शाया है। अधिक मनन करके पाठक इसको समझें और इसकी गंभीरताका अनुभव करें। ये सब मंत्र अति संक्षिप्त और सूत्र जैसे हैं। पूर्वापर संबंधसेही उनको जानना चाहिये।

२१ वनेषु जायुः = वनोंकी वनस्पतियोंका जैसा वैद्य स्वीकार करता है, **मर्तेषु मित्रः =** मानवोंमें जैसा मित्र सबका हितकारी होता है, **अजुर्यं राजा इव =** जरारहित तरुण वीरको जैसा राजा अपने पास रखता है वैसाही, **श्रुष्टिं वृणीते =** विजयी सहायकर्ताको स्वीकार करता है। सुयोग्य विजयी सहायकको अपने पास रखना उचित है। वैद्य वनोंमें जाकर सुयोग्य औषधियों और वनस्पतियोंको चुनचुनकर अपनी सहायतार्थ लाता है और उनकी सहायतासे रोगोंको दूर करता है। मानव जैसे मित्रको प्राप्त करते हैं और शत्रुओंको दूर करते हैं। राजा जैसा तरुण वीरोंको अपने पास रखता है और उनकी सहायतासे शत्रुको दूर करता है, उसी तरह वर्णनीय विजयी वीरकी सहायता प्राप्त करके निरुत्साही तथा पराजित भाववाले अधम मानवोंको दूर करता है। यह विजयके लिये अत्यंत आवश्यक है। **जायुः =** वैद्य, विजयी वीर। **श्रुष्टि =** सुननेवाला, सहायक, मददगार, वर, वैभव, धनधान्यसमृद्धि, सुख॥

२२ साधुः क्षेमः न, भद्रः क्रतुः न, होता हव्यवाट् स्वाधीः भुवत्। = साधु जैसा कल्याण करता है, कर्तृत्वशक्तिसे जैसा वैभव मिलकर सुख मिलता है, यज्ञसे जैसा सबका भला होता है, वैसाही यह होता और अन्न पहुंचानेवाला अग्रणी (अग्नि) धारणशक्तिसे युक्त होकर सबको सुखी करता है। साधुता अपने अन्दर स्थापन करनी चाहिये और क्रतु भी करना चाहिये। इन दोनोंका उद्देश्य जनताका क्षेम और भद्र करनाही है। (होता) दाता और (हव्यवाट्) हविष्यान्न पहुंचानेवाला ये दो साधनमार्ग है, दान देना और अन्न पहुंचाना, इनके साथ साथ **' स्वाधीः '** (सु-आ-धीः) होना है, यह अनुष्ठान है। (सु) उत्तमतासे (आ) पूर्णतया (धी) ध्यान करना यह अनुष्ठान है। **'आ-धा'** धातुका अर्थ = रखना, स्थापन करना, एक दिशामें लगाना, एक कार्यमें लगना, अपने आपको लगाना, आधार देना, बनाना, उत्साहित करना, देना, नियुक्त करना, पवित्र करना, नियम पालनमें लग जाना। ' इस धातुसे ' आ-धी ' पद बनता है। और ' सु ' लगकर ' स्वाधीः ' पद सिद्ध होता है। **'आधिः (आधीयते स्थाप्यते प्रतिकाराय मनः आदिकं मनेन इति आधिः, सु सुष्ठु आधिः स्वाधिः)' =** प्रतिकार करनेके लिये मन आदिका एक स्थानपर लगानेका नाम आधि है। यहां प्रतिकार शत्रुका है, शरीर, मन, बुद्धि आत्मा, समाज, धर्म, राष्ट्र आदि क्षेत्रोंमें अनेक प्रकारके शत्रु होते हैं, उनका प्रतिकार करके वहां अपनी स्वाधीनता प्राप्त करना और

जनताका क्षेम और भद्र सुस्थिर रखनेका सब कार्यक्रम यहा इस मन्त्रने बताया है। ' आधि ' का अर्थ ' धर्म-चिन्तन, कर्तव्य-चिंतन, उन्नतिकी आशा' आदि है, तथा मानसिक व्यथा-का भी भाव इसमें है।

२३. विश्वानि नृम्णा हस्ते दधानः, गुहा निषीदन् अग्ने देवान् धात्। = सब पौरुषसे प्राप्त होनेवाले धन अपने हाथमें रखकर, स्वयं गुप्त स्थानमें रहकर, इसने सब देवोंको बलमें धारण किया, बलिष्ठ किया है। इसमें दो पद विशेष महत्त्वके हैं, उनके अर्थ ये हैं— ' **नृम्णं** ' = सुख, सुखी होना, मानवता, बल, शक्ति, धैर्य, धन, (नृ-मनः) मानवोंका मानसिक सामर्थ्य, बौद्धिक बल, धैर्य, शौर्य, वीर्य। ' **अमः** ' = अपक्व फल, गति, बल, शक्ति, भय, रोग, सेवक, प्राण, आत्मशक्ति, अमाप स्थिति।

इस मंत्रमें तीन विधान हैं (१) सब बलोंको अपने आधीन करता है, (२) स्वयं गुहामें बैठता है, गुप्त रहता है, और (३) दिव्य विबुधोंको बलमें स्थापन करता है, उनका बल बढाता है। प्रथम सब बलोंको, मानसिक शक्तियोंका अपने हाथमें रखना, अपने आधीन करना चाहिये। सब इंद्रियादिकोंपर अपना प्रभुत्व रखना चाहिये। जो शक्ति अपने आधीन नहीं होगी वह अपना लाभ करेगी या नहीं इस विषयमें कौन निश्चय कर सकता है? इसीलिये सब शक्तियां अपने आधीन करना पहिली और मुख्य बात है। इसके पश्चात् देवोंको बलमें धारण करना है, उनको शक्तिके साथ कर देना है। व्यक्तिमें इंद्रिय-गण देव हैं, समाजमें दिव्य ज्ञानी देव हैं और विश्वमें अग्नि आदि देव हैं। ये देव सामर्थ्यसंपन्न रहने चाहिये और अपने आधीन भी रहने चाहिये। क्योंकि सब कार्य इन देवोंके द्वारा ही होने हैं। इनकी प्रतिकूलतासे कोई कर्म यथायोग्य रीतिसे होगेही नहीं। इसलिये इनको अपने अधीन रखकर, इनको बलवान् भी बनाना चाहिये, तत्पश्चात् इनसे कार्य कराना है। पर यह सब अपने आपको अत्यंत गुप्त रखकरही करना चाहिये। कौन कहांसे कार्य करवाता है, इसका पता न लगे। इससे दो बातें सिद्ध होती हैं, एक तो कर्ताका निरभिमान और प्रसिद्धिकी लालसाका न होना और दूसरा शत्रुसे सुरक्षित रहना।

राष्ट्रीय उन्नतिकी साधनाके लिये ये उपदेश बडेही मननीय और आदरणीय हैं।

२४ धियंधाः नरः अत्र ईं विदन्ति, हृदा तष्टान् मंत्रान् अशंसन्— बुद्धिकी धारणा करनेवाले ज्ञानी नेतागण यहां इस अग्रणीको प्राप्त करते हैं और हृदयसे बनाये विचारोंको उससे कहते हैं, उसको अपने हृदयके विचार सुनाते हैं। यहां स्पष्ट प्रतीत होता है कि ' बुद्धिवान् नेता सभामें परस्परके साथ मिलें, अपने अपने मनसे या हृदयसे निर्धारित किये विचार मनन पूर्वक बोलें, और एक-मतसे जो सिद्ध हो जाय उसका ग्रहण करें। यज्ञमें यही होता है, प्रथम अग्नि (अग्रणी) यज्ञस्थानमें स्थापन किया जाता है, पश्चात् मननशील ऋत्विज उसको घेर कर बैठते हैं और अपने हृदयके मंत्र वारंवार गाते है। सभामें यही हो, प्रथम सभापति निश्चित हो, सब सदस्य उसके पास बैठें, पश्चात् अपने हृदयसे निर्धारित किए सूक्ष्मसे सूक्ष्म विचार कहें और इस तरह सभाका कार्य चले। (**हृदा तष्टान् मंत्रान् अशंसन्**) हृदयसे सूक्ष्मसे सूक्ष्म विचार निर्धारित करके कहनेकी बात अत्यंत मुख्य है। बारीक बारीक बातोंका विचार करनेका भाव यहां स्पष्ट है और वही मानवी उन्नतिका मार्ग बताता है।

२५ अजः न क्षां पृथिवीं दाधार, द्यां सत्यैः मन्त्रैः तस्तम्भ — अज (आत्मा अथवा सूर्य) ने इस विस्तृत भूमिका धारण किया है और सत्य अटल नियमोंसे प्रकाशलोकको भी सुस्थिर किया है। यहां ' अजः ' पद मुख्य है इसका **अर्थ—** ' (अ-जः) अजन्मा, (अजति इति अजः) गतिमान, प्रगति करनेवाला, हलचल करनेवाला। **अज** = संचालक, चलानेवाला, नेता, अग्रणी, सूर्यकिरण, किरण। नेता मातृभूमिका धारण करता है, अग्रणी राष्ट्रका संचालन सुयोग्य रीतिसे करता है, सत्य मन्त्र अर्थात् सत्यकी सुरक्षा करनेवाले सुविचारोंसे, मन-नीय विचारोंसे प्रकाशमय स्थानकी सुरक्षा करता है। ' **द्यु** ' का अर्थ है– ' दिन, आकाश, प्रकाश, तेजस्वी, तेजोमय स्थान, स्वर्ग, तीक्ष्णता, अग्नि। '

२६ विश्वायुः (त्वं) पश्वः प्रिया पदानि नि पाहि, गुहा गुहं गाः ।— दीर्घ आयुसे युक्त होकर तू पशुके प्रिय स्थानोंकी सुरक्षा कर और स्वयं गुप्त स्थानसे भी अधिक गुह्य स्थानमें जा कर रह ॥

पशुओंको जो प्रिय स्थान होते हैं उनकी सुरक्षा करनी चाहिये। जहां घास उत्तम होता है, जहांका पीनेके लिये अच्छा पानी होता है, जहां आरामसे बैठा जाता है, वे स्थान गौआदि पशुओंके लिये प्रिय होते हैं। ऐसे स्थानोंकी राष्ट्रमें सुरक्षा होनी

चाहिये । पशुओंकी सुरक्षा राष्ट्रीय उन्नति करनेवाली है । इसलिये इसका अवश्य विचार राष्ट्रप्रबंधमें होना चाहिये ।

२७ **य ईं गुहा भवन्तं चिकेत, यः ऋतस्य धारां आ ससाद** ।— जो गुप्त स्थानमें सर्वत्र व्यापक होकर रहनेवाले इस (अग्नि या आत्मा) को जानता है, वह सत्यकी धाराको, यज्ञके मार्गको प्राप्त करता है । यह यज्ञ मनुष्योंकी उन्नति करनेवाला है ।

२८ **ये ऋता सपन्तः वि चृतन्ति, अस्मै वसूनि प्र ववाच**— जो सत्यके साथ सत्यकी प्रशंसा करते हुए संगठन करते हैं, उनके लिये धनोंकी प्राप्तिके मार्गका वर्णन कर। उनको ही धन मिले कि जो सत्यका पालन करते हैं और सत्यके आश्रयसे सुसंगठित होते हैं ।

२९ **यः वीरुत्सु महित्वा विरोधत्, उत प्रजाः प्रसूषु अन्तः** (विरोधत्)– जो अग्नि औषधियों, वृक्षों, लकडियोंमें अपनी महिमासे रहता है, और माताओंमें संतान जैसा लकडियोंमें रहता है । मातारूप अरणियोंसे उत्पन्न होता है । अग्नि वृक्षोंमें रहता है और उनसे प्रकट होता है । अग्नि लकडियोंमें रहता है, उनसे उत्पन्न होता है, लकडी इसकी माता है और अग्नि उसका पुत्र है, पर यह पुत्र अपनी माताका और माताके कुलकाही (विरोधत्) विरोध करता है, लकडियोंसे उत्पन्न होकर उन्हींका नाश करता है । यह विरोध यहां है, यह एक अलंकार यहां है ।

३० **चित्तिः, अपां दमे विश्वायुः (तं) धीराः संमाय, सद्म इव चक्रुः**— जो ज्ञान स्वरूप है, जो जलप्रवाहोंके स्थानोंमें संपूर्ण आयु व्यतीत करता है, अर्थात् जो नदीके किनारोंपर सदा यज्ञ करता है, अथवा यज्ञ करवाता है, उसका ज्ञानी या बुद्धिमान् पुरुष अच्छी तरह संमान करते हैं, और उसीको अपने घरके समान अपना आश्रय मानते हैं । · ज्ञानी सत्कर्म कर्ता पुरुषही जनताके लिये आश्रयस्थानसा प्रतीत होता है ।

यहां तृतीय सूक्त समाप्त हुआ है ।

३१ **भुरण्युः श्रीणन् दिवं उपस्थात्, स्थातुः चरथं अक्तून् वि ऊर्णोत्** । = सबका भरणपोषण करनेवाला और सबकी शोभा बढानेवाला (अग्निदेव प्रदीप्त होकर) द्युलोकतक (अपने प्रकाशसे) फैल गया, यह स्थावर जंगमोंको और किरणोंको व्यक्त या प्रकट करता है। अग्नि प्रदीप्त होकर वह बडा दावानलका रूप धारण करता है । यह अन्न पकाकर सबका भरणपोषण करता है, यही सूर्यरूपसे आकाशमें प्रकाशता है, अग्निरूपसे भूमिपर प्रकाश फैलाता है, जिसके प्रकाशसे स्थावर तथा जंगम सभी पदार्थ स्पष्ट और व्यक्त रूपसे दिखाई देते हैं । सूर्य जब ऊगने लगता है, तब रात्रिको भी वह प्रकाशित करता है। यही उषःप्रकाश कहलाता है। '**अक्तु:**' = रात्री, अन्धकार, धुंधलापन, प्रकाश, किरण, सुगंधित लेप । यह एकही अग्नि भूमिपर अग्निरूपसे, अन्तरिक्षमें विद्युद्रूपसे और द्युलोकमें सूर्यरूपसे प्रकाशता है । यह एकही तीन रूपोंमें दिखाई देता है ।

३२ **विश्वेषां देवानां एकः देवः महित्वा परिभुवत्** = सब देवोंमें एकही अपनी महिमासे सर्वोपरि हुआ है । सब देवोंमें एकही देव सबका प्रमुख है, मुखिया है, श्रेष्ठ है, सबका नियामक है, जो सब विश्वपर शासन करता है ।

३३ **जीवः शुष्कात् जनिष्ठाः; विश्वे ते क्रतुं जुषन्त** । = जीव शुष्कसे जन्मा है, तब सबोंने तेरे कर्तृत्वकी प्रशंसा की । जीव सचेतन है, वह शुष्क प्रकृतिसे प्रकट होता है । प्रकृति अचेतन है, पर जब वह चेतनके साथ संयुक्त होती है, तब जीव प्रकट होता है । यहां उदाहरण अग्नि और काष्ठका है। अग्नि जलता है, काष्ठ शुष्क है वह स्वयं प्रदीप्त नहीं है, पर जब उसको अग्निका संयोग होता है तब वह अग्निके समान प्रदीप्त होता है । जीव और अग्निका वर्णन यहां समानतया किया है। प्रकृति और शुष्क काष्ठ यह क्रमशः उनका कार्यक्षेत्र है । इस तरह प्रकट हुए सभी साधक यज्ञकी सेवा करते हैं । अग्निपक्षमें हवनाग्निकी हवनक्रियासे सेवा करते हैं और जीवपक्षमें जीवनरूप जन्मसे मरणपर्यंत चलनेवाले दीर्घ सत्रका अनुष्ठान करते हैं । जीवनको यज्ञमय बनाते हैं ।

३४ **एवैः अमृतं सपन्तः विश्वे नाम ऋतं देवत्वं भजन्त** = अपने प्रयत्नोंसे अमरत्वकी प्राप्ति करनेवाले सभी साधक यश, सत्य और देवत्वको प्राप्त करते हैं। **एवः** = (यन्ति इति) = प्रगति, प्रगतिका अनुष्ठान । अनुष्ठान करनेसे ही मनुष्य अमरत्व प्राप्त कर सकता है। जिससे उसका नाम होता है, सत्य और सरलता ये उसके सहज धर्म होते हैं, जिसका परिणामस्वरूप वह देवत्व प्राप्त करता है । जिसने अमरत्वकी प्राप्तिके लिये अनुष्ठान किया है और जो सत्यका पालन करता है वह देवत्व प्राप्त करता है। देवत्व प्राप्तिका

साधन यहां कहा है।

३५ विश्वे ऋतस्य प्रेषाः, ऋतस्य धीतिः, विश्वायुः अपांसि चक्रुः । = सभी सत्यके प्रचारक और सत्यके धारण करनेवाले, अपनी सब आयुपर्यंत अच्छे अच्छे कर्म करते हैं। और येही अपनी उन्नतिका ठीक मार्गसे साधन करते हैं। यहां '**ऋत**' का अर्थ 'सत्य और सरलता' है। '**अपस्**' का अर्थ 'व्यापक कर्म, जिस कर्मका परिणाम सब जनताके लिये हितकर होता है ऐसा शुभकर्म'। जो अपनी उन्नति चाहते हैं वे ऐसेही कर्म करते जायँ। जो केवल व्यक्तिके भोगके लिये कर्म होता है वह क्षुद्र कर्म है, पर जो संपूर्ण जनसमुदायके हितके लिये कर्म होता है, वही 'अपस्' अर्थात् 'व्यापक कर्म' कहलाता है।

३६ यः तुभ्यं दाशात्, यः वा ते शिक्षात्, चिकित्वान् (त्वं) रयिं दयस्व । = जो तुझे दान देगा, जो तुझे सिखायेगा, ज्ञानी होकर तू उसे धन दे। जिससे सहायता प्राप्त हुई है उसको उसके बदले योग्य समयमें सहायता करना योग्य है। जिसने पढाया है उसको ज्ञानी होनेके पश्चात् गुरुदक्षिणारूपमें धन देना योग्य है। उऋण होना हरएकके लिये अत्यावश्यक है। अग्नि अरणीसे उत्पन्न होता है उस समय वह छोटा रहता है, घृताहुति दे देकर उसका परिपोष ऋत्विज करते हैं और उसकी मंत्रपाठद्वारा वधाई करते हैं, अग्नि उनको धन देता है। इससे ऊपर बताये विधिके अनुसार बोध उऋण होनेके विषयमें मिलता है।

३७ मनोः अपत्ये होता रयीणां पतिः । = मनुकी संतानोंके संगठनमें जो होता या दाता है वही उनके धनोंका स्वामी है। अर्थात् जो जनताकी संघटना करनेके लिये दान देता है, अपना अर्पण करता है, वही उस जातीके धनोंका अधिपति होता है। जनता उसीको प्रमुख बनाती है जो अधिक त्याग करता है।

३८ तनूषु मिथः रेतः इच्छन्तः, अमूराः स्वैः दक्षैः सं जानत = अपने स्त्रीपुरुषोंके शरीरोंमें परस्पर वीर्य बढानेकी इच्छा करनेवाले ज्ञानी वीर अपने बलोंसेही अपने साथ साथ संयुक्त होनेका ढंग जानते हैं। अर्थात् शरीर में रजवीर्यकी वृद्धि होनेके पश्चात् स्त्रीमें और पुरुषमें परस्पर मिथुन अर्थात् संमेलन करनेकी इच्छा होती है, पश्चात् वे अपने बलोंके अनुसार परस्पर संगत होनेकी रीति जानकर संगत होते हैं। यही सुप्रजाजननकी रीति है। शरीरमें वीर्य उत्पन्न होनेके पूर्व स्त्रीपुरुष-संबंध नहीं होना चाहिये।

पूर्व मंत्रमें '**मनोः अपत्ये**' ये पद हैं। मनुकी संतान वहां कही हैं, इसलिये उत्तम संतान उत्पन्न करनेका विधि यहां कहा है। पूर्वके मंत्रोंके उपदेश भी यहां विचारपूर्वक देखने चाहिये शिक्षा प्राप्त करना, गुरुदक्षिणा देना, धन प्राप्त करना, पश्चात् सुप्रजा उत्पन्न करना योग्य है। ये सब मंत्र इस तरह पूर्वापर संबंधपूर्वक देखनेयोग्य हैं।

३९ पितुः न पुत्राः, अस्य शासं तुरासः ये श्रोषन् ते क्रतुं जुषन्त = जिस तरह पुत्र पिताके अधिकारको प्राप्त करते हैं, उसी तरह इस जगत्पिताके शासनको जो सत्वर मानते और वैसा आचरण करते हैं, वे यज्ञ करते हैं। और पिताके समान समर्थ होते हैं। व्यवहारमें पिताके वित्त आदिपर पुत्रका अधिकार रहता है, पर पुत्र पागल नहीं होना चाहिये। पिताके अनुशासनमें जो पुत्र रहता है, और जो मूढ नहीं है, उसीको पितृवित्तका संपूर्ण अधिकार मिलता है। वैसाही यहां प्रभुके शासनको जो सत्वर सुनते हैं वेही यज्ञ करते और प्रभुके परम ऐश्वर्यसे युक्त होते हैं।

४० पुरुक्षुः रायः दुरः वि औणोत्, दमूना नाकं नक्षत्रेभिः पिपेश = बहुत अन्नका दान करनेवाला धनके द्वार खोल रखता है। जिसका मन संयमसे युक्त है, वह मानो स्वर्गको नक्षत्रोंसे सुशोभित करता है। अपने पास बहुत अन्नका संग्रह करना और यज्ञमें उसका दान करना, यह अनुष्ठान है जिससे धनके द्वार खुल जाते हैं। दानी मनुष्यके पास सब संपत्ति आ जाती है। मनका दमन करनेवालाही अपने इंद्रिय दमनसे स्वर्गकी शोभा बढाता है। संयमी मनुष्यके संयमसे स्वर्ग भी अधिक रमणीय हो जाता है।

मानवी उन्नतिका ध्येय और मार्ग

(विश्वेषां देवानां एकः देवः परि भुवत् । ३२)— सब देवोंमें एकही मुख्य देव है जिसका शासन सबपर होता है, **(शुष्कात् जीवः जनिष्ठाः । ३३)**— शुष्क प्रकृतिसे, प्रकृतिके साथ आत्माका संबंध आनेसे जीव जन्मा है। **(विश्वे क्रतुं जुषन्त)**— सभी ज्ञानीजन यज्ञ करते हैं। **(अमृतं एवैः सपन्त)**— अमृतत्वको नाना प्रयत्नोंसे प्राप्त करते हैं। **(भुरण्युः दिवं उपस्थात् । ३१)** = दूसरोंका भरण-

पोषण दानसे करनेवाला ज्ञानी दिव्य प्रकाशमान होनेके लिये आत्माका उपस्थान करता है, उपासना करता है। वह आत्मा (**स्थातुः चरथं अक्तून् वि ऊर्णोत्।** ३१)- स्थावर जंगम अनंत वस्तुओंको प्रकाशित करता है और अज्ञान अन्धकारको दूर करता है। इस प्रकाशमें आकर (**ऋतस्य प्रेषाः, ऋतस्य धीतिः, विश्वायुः विश्वे अपांसि चक्रुः** ३५)- सत्यकी प्रेरणा और सत्यकी धारणा करते हुए संपूर्ण आयुभर सब ज्ञानी साधक प्रशस्ततम कर्म करते हैं। (**विश्वे ऋतं देवत्वं भजन्त।** ३४) ये सब सत्यकी और देवत्वकी प्राप्ति करते हैं। (**अस्य शासं तुरासः श्रोषन् ते क्रतुं जुषन्त।** ३९)— इस प्रभुके शासनको त्वरा सुनकर वे जीवन भरमें यज्ञही करते रहते हैं। (**पुरुक्षुः रायः दुरः वि औणोत्।** ४०)- जिसके पास बहुत अन्न है ऐसा दानी मनुष्य मानो धनके द्वारही सबके लिये खुला करता है, (**दमूना नाकं पिपेश**)— वह इंद्रियदमन करनेवाला साधक अपने संयमसे स्वर्गधामकी शोभा बढाता है। इतनी इसकी योग्यता मानी जाती है।

ऐसे साधक (**तनूषु मिथः रेतः इच्छन्।** ३८)— अपने शरीरोंमें रेतके संवर्धनकी इच्छा करते हुए वे (**अमूराः स्वैः दक्षैः सं जानत**)— ज्ञानीजन अपने बलोंसे संगतीकरणका मार्ग जानते हैं, और पश्चात् (**पितुः पुत्राः**) पितासे पुत्र उत्पन्न करते हैं और उसको अपना अधिकार पिता देता है।

इस ढंगसे उक्त चतुर्थ सूक्तके मंत्रोंकी संगति देखनेयोग्य है। पाठक इस ढंगसे सूक्तके मंत्रोंकी संगति लगाकर बहुत बोध प्राप्त कर सकते हैं।

चतुर्थ सूक्तका विवरण समाप्त।

४१ उषः जारः न, शुक्रः शुशुक्वान्, समीची दिवः न, ज्योतिः पप्रा। = उषाका प्रियपति जैसा (सूर्य चारों ओर अपना प्रकाश विश्वभरमें फैलाता है, वैसाही) बलवान् तेजस्वी यह (अग्निदेव) दोनों द्युलोक और भूलोकमें अपनी ज्योति फैलाता है। सूर्य और अग्निके समान मनुष्योंको उचित है कि वे भी स्वयं तेजस्विता प्राप्त करके विश्वभरमें अपना तेज फैला देवें।

४२ प्रजातः क्रत्वा परि बभूथ = उत्पन्न होतेही प्रशस्ततम कर्म करके सबपर प्रभाव डालता है। सबसे श्रेष्ठ बनता है, सर्वोपरि स्थानपर विराजता है। हरएक मनुष्य पुरुषार्थ साधनके उत्तमोत्तम कर्म करके श्रेष्ठ बने। **देवानां पुत्रः सन् पिता भुवः** = देवोंका पुत्र होता हुआ भी उनके लिये पिता सदृश आदरणीय होता है। अरणीसे निकला अग्नि यज्ञाग्नि बनकर विश्वमें संमानयोग्य हो जाता है। आयुमें छोटा होता हुआ भी विद्या, वीर्य और तेजसे सबसे बढकर होता है। हरएक मनुष्य विद्या, वीर्य आदिकी प्राप्ति करके श्रेष्ठ बननेका यत्न करे।

४३ वेधाः अदृप्तः विजानन् अग्निः, गोनां ऊधः न, पितूनां स्वाद्म। = कर्ममें कुशल, गर्वहीन, ज्ञानी अग्नि गौवोंके दुग्धाशयके दूधको जैसा स्वादु बनाता है वैसाही अन्नोंको भी स्वादु बनाता है। इसी तरह मनुष्य विशेष कर्तृत्वशक्तिसे युक्त होवे, घमंड न करे, ज्ञानी बने, गौवोंके दूधका तथा मधुर अन्नोंका स्वाद लेवे। '**वेधाः**' = वह है कि जो नयी नयी चीजें बनाता है। कुशल कर्म करनेवाला विधाता यदि गर्वहीन और विज्ञानसंपन्न हुआ तो वह विशेष आदरणीय होता है। गौके गर्भाशयसे दूध निकलतेही उस धारोष्ण दूधका सेवन करना योग्य है। इसी तरह स्वादु अन्नका सेवन करना योग्य है। ये दो सूचनाएँ यहां मननीय हैं।

४४ जने न शेवः = जनोंमें सेवा करनेयोग्य। जो पुरुषार्थी ज्ञानी और नया विधान करनेमे समर्थ होता है, विधाता-विशेष सुखदायी वस्तुओंका कर्ता होता है, वही सेवा करनेयोग्य होता है। (**मध्ये आहुर्यः**) = कठिन समय प्राप्त होनेपर जो सहाय्यार्थ बुलाया जाता है वही जनोंमें आदरणीय होता है। (**दुरोणे रण्वः निषत्तः**) = अपने घरमें रमणीय होकर जो रहता है। (अपने घरमें, नगरमें, प्रान्तमें, देशमें अथवा अपने राष्ट्रमें जो रमणीय समझा जाता है। जनताका हित करनेके कारण जो जनतामें सेवा करनेयोग्य है वही पूजनीय है। मनुष्य ऐसा बने।

४५ जातः पुत्रः न दुरोणे रण्वः। = नवजात पुत्रके समान घरमें सबके लिये रमणीय प्रतीत होवे। हरएकके मनमें उसके विषयमें आदरका भाव उत्पन्न होवे।

(**वाजी न प्रीतः विशः वि तारीत्**) = संतुष्ट हुए बलवान् वीरके समान यह प्रजाजनोंका तारण करता है। जनताकी सुरक्षा करता है। इसी तरह जनताकी सुरक्षा करनेका कार्य हरएक मनुष्यको करना उचित है।

४६ **नृभिः सनीळाः विशः, यत् अह्व, अग्निः विश्वानि देवत्वा अश्याः ।** = नेताओंके द्वारा एक घरमें रहनेवाले प्रजाजनोंकी सुरक्षा करनेके निमित्त, जिस वीरको बुलाया जाता है, वह अग्रणी (अग्नि) देव सब प्रकारके देवभावोंको प्राप्त करता है। एक घरमें रहनेवाले प्रजाजन एक देशवासीही समझने चाहिये। इनकी सुरक्षा करनी चाहिये। यह कार्य जिसकी सहायतासे होता है वह निःसंदेह सब दैवी गुणोंका धारण करता है, अथवा उसमें सब दिव्य भाव रहते है। जनताकी सुरक्षा करनेके लिये जो अपने आपका समर्पण करता है वह देवत्वका अधिकारी निःसंदेह है। अग्नि जैसा जनताको प्रकाश देनेके लिये संपूर्णतया आत्मसमर्पण करता है, वैसाही मानवोंको करना उचित है।

४७ **ते एता व्रता नकिः मिनन्ति, यत् एभ्यः नृभ्यः श्रुष्टिं चकर्थ ।** = तुम्हारे इन नियमोंका कोई उल्लंघन कर नहीं सकता, जो कार्य इन मानवोंकी उन्नतिके लिये तुमने किये। मानवोंकी उन्नतिके कार्य ऐसे करने चाहिये कि जिनके अन्दर कोई भी विघ्न न कर सके।

४८ **यत् अहन्, ते वसः समानैः नृभिः युक्तः रपांसि, यत् विवेः ।** = जो तुमने शत्रुका वध किया, वह तुम्हारा बडा भारी पराक्रमही है। इसी तरह तुमने साधारण मनुष्योंके द्वाराही (बडे विघ्नकारी शत्रुओंका नाश करनेके) कार्य किये और उनको भगाया (यह भी तुम्हारा बडाही पौरुष है)। वीरोंको उचित है कि वे ऐसे पराक्रम करें।

४९ **उषः न जारः, विभावा उस्रः संज्ञातरूपः अस्मै चिकेतत् ।** उषाके प्रियकर सूर्यके समान, यह विशेष प्रभावान् सबको जाननेवाला (अग्नि) इस (भक्तको) जाने। इसको अपना प्रिय माने। इसपर कृपा करे। सूर्य जैसा अपने प्रकाशसे सब विश्वको प्रकाशित करके यथावत् जानता है, वैसाही स्वयंप्रकाशी अग्नि जाने। और वैसाही राष्ट्रमें अग्रणी भी राष्ट्रके पुरुषोंको जाने।

५० **त्मना वहन्तः, दुरः वि ऋण्वन्, दर्शीके स्वः विश्वे नवन्त ।** = अपने (प्रकाशको) फैलाते हुए, (उन्नतिके) सब द्वार खोलकर, दर्शनीय आत्मा (के प्रकाशका) सबके (सब ज्ञानी) वर्णन करते हैं। प्रथमतः सभी कार्यका भार स्वयं उठाना चाहिये, विघ्नोंको दूर करके सब उन्नतिके मार्ग सबके लिये खुले होने चाहिये। तब आत्माके प्रकाशका चारों ओर फैलाव होगा जिसका सब ज्ञानी सदा वर्णन करते है ॥

इस पांचवें सूक्तके उपदेश स्पष्ट समझमें आनेयोग्य और सबोंके व्यवहारमें लानेयोग्य हैं। अतः इनका विशेष विवरण करनेकी यहां आवश्यकता नहीं है।

यहां पांचवां सूक्त समाप्त है।

५१ **पूर्वीः मनीषा वनेम। सुशोकः अर्यः अग्निः विश्वानि अश्याः ।**— हम पूर्व (वैभव अपनी) बुद्धिसे प्राप्त करेंगे। यह तेजस्वी स्वामी अग्रणी (अग्निदेव) सबको अपने आधीन करता है। हरएकको अपना वैभव प्राप्त करना चाहिये। स्वामी अपनी सब शक्तियोंको अपने अधीन रखे।

५२ **दैव्यानि व्रता चिकित्वान्, मानुषस्य जनस्य जन्म आ ।**— दिव्य नियमोंको जानो, दिव्य नियम वे है कि जो सूर्य, विद्युत्, वायु आदि देवताओंके संबंधमें जाननेयोग्य है। क्योंकि इनपरही मानवका सुख अवलंबित है। मनुष्यका जन्म जिस तरह सफल और सुफल होगा, वह मार्ग भी तुम्हें जानना चाहिये।

५३ **यः अपां, वनानां, स्थातां चरथां च गर्भः-** जो जलों, वनों, स्थावरों और जंगमोंके अन्दर रहता है। यह अग्नि सब पदार्थोंमें व्यापक है। वैसाही आत्मा है।

५४ **अस्मै दुरोणे अद्रौ चित् अन्तः। अमृतः स्वाधीः। विश्वः विशां न।**- इस (देव) के लिये घरमें तथा पर्वतपर अर्थात् सर्वत्र अपना अर्पण किया जाता है। यह अमर है और उत्तम ध्यान करनेयोग्य है। संपूर्ण सत्ताधारी राजा जिस तरह सब प्रजाजनोंको आधार देता है (वैसाही यह देव सबके लिये आश्रय देता है और सबकी उन्नति करता है)।

५५ **सः हि अग्निः क्षपावान्, रयीणां दाशत्, यः अस्मै सूक्तैः अरं** (करोति) ।- यह अग्नि रात्रीमें प्रज्वलित होकर धनोंका दान उसके लिये करता है, कि जो इस अग्निको सूक्तोंसे अलंकृत करता है। जो यज्ञ करता है उसको यह सब धन देता है।

५६ **देवानां जन्म, मर्तान् विद्वान्, एता भूम नि पाहि ।**— यह देवोंका जन्म, तथा मानवोंके जीवनोंको जानता है और इस मातृभूमिकी सुरक्षा करता है। सूर्य, चन्द्र, वायु, जल

आदि देवताओंके विषयका ज्ञान जानता है, मर्त्योंके विषयमें ज्ञातव्य बातें जानता है और इस मातृभूमिकी सुरक्षा करता है। मनुष्य भी ज्ञान-विज्ञानसे युक्त होकर जनताकी सुरक्षाके लिये यत्न करें।

५७ पूर्वीः क्षपः विरूपाः यं वर्धान्। स्थातुः रथं च ऋतप्रवीतम्।— पूर्वकी अनेक रात्रियोंने अनेक रूपोंमें इसकी बधाई की है। स्थावर और जंगम जिसके द्वारा सत्य-नियमोंसे वेष्टित जैसा हुआ है। अर्थात् अनेक रात्रियोंमें जिसका संवर्धन किया है और स्थावर जंगम जिससे व्याप्त है।

यहां क्रमसे अनेक रात्रियोंके होनेका उल्लेख है जो उत्तरीय ध्रुवके स्थानमें ही संभव है। क्योंकि वहां छः महिनोंकी रात्रि होती है और उस समय वहां अग्नि प्रज्वलित रखनेकी आवश्यकता होती है।

५८ स्वः निषत्तः होता अराधि, विश्वानि अपांसि सत्या कृण्वन्।— अपने निज तेजमें प्रकाशित रहनेवाला, देवोंको बुलानेवाला यह अग्नि सुपूजित हुआ है। यह सब पुरुषार्थोंको सत्य-फल-दायी करता है। अपने तेजसे तेजस्वी बनो, देवोंको बुलाकर उनको प्रसन्न करो, सब कर्मोंको सत्य फलदायी होने योग्य रीतिसे संपन्न करो।

५९ वनेषु गोषु प्रशस्ति धिषे— वनों और गौओंके विषयमें प्रशंसा करो। गौवें वर्णनीय हैं और गौवोंकी पालना करनेके कारण वन भी प्रशंसाके योग्य हैं। (**विश्वे नः स्वः बलिं भरन्त**)- सभी हम अपना आत्मसमर्पण करते हैं। सबकी भलाईके लिये हम यह दान करते हैं।

६० त्वा नरः पुरुत्रा वि सपर्यन्। जिव्रेः पितुः न, वेदः वि भरन्त।— सब मनुष्य तेरी सर्वत्र पूजा करते हैं। जिस तरह वृद्ध पिताका धन (पुत्रको मिलता है, उस तरह) सब धन तुम्हारेसे हम सबको प्राप्त होता है।

६१ साधुः न गृध्नुः— साधुके समान (सबकी भलाई) चाहनेवाला, (**अस्ता इव शूरः**)- शूर पुरुषके समान अस्त्र चलानेवाला, (**याता इव भीमः**)- शत्रुपर हमला करनेवाले शूर सैनिकके समान भयंकर उग्र, (**समत्सु त्वेषः**)- संग्रामोंमें तेजस्वी अथवा उत्साहसे युद्ध करनेवाला जो होता है, वही विजयी होता है।

यहां छटॉं सूक्त समाप्त हुआ।

६२ (सनीळाः उशतीः जनयः)— एक घरमें रहनेवालीं पतिकी प्राप्तिकी इच्छा करनेवाली तरुण युवतियाँ जैसी (**उशन्तं नित्यं पतिं न**) स्त्रीकी प्राप्तिकी इच्छा करनेवाले नित्य साथ रहनेवाले पतिके (**उप प्रजिन्वन्**) पास जा कर उसको प्रसन्न करती हैं। यहां ' **जनयः पतिं उप प्र जिन्वन्** ' अर्थात स्त्रियां पतिके पास जाकर उसको प्रसन्न करती हैं, ऐसा कहा है। पति स्त्रीके पास जाता है, ऐसा नहीं कहा। साथ ही साथ 'पति' पद एक वचनमें है और 'जनयः (पत्नियाँ) पद बहुवचनमें है। इससे एक पतिकी अनेक स्त्रियां साथ साथ होनेकी बात स्पष्ट प्रकट हो रही है। ये पत्नियां (स-नीळाः) एक घरमें रहनेवालीं हैं और (उशतीः) पतिकी कामना करनेवालीं अर्थात् तरुणी हैं।

श्यावीं उच्छन्तीं अरुषीं उषसं न गावः- काले वर्णवाली परंतु अन्धकारको दूर करनेवाली तेजस्विनी उषाको जैसी गौवें प्राप्त होती हैं, अर्थात् सबेरे उषःकालमें गौवें चरने के लिये खोल दी जाती हैं, वे हम्बारव करती हुई जाती हैं और उषाकी रमणीयता बढाती हैं। इसी तरह ' **चित्रं स्वःसारः अजुष्रन्** । '- विचित्र प्रकाशवाले अग्निकी बहिनें (हाथकी अंगुलियाँ) सेवा करती हैं, अग्निमें घृत, समिधाएं तथा अन्यान्य हवनीय पदार्थ डालकर उसकी शोभाको बढाती हैं। ऋत्विजोंकी अंगुलियांही अग्निकी सेवा करती हैं और उधर उषःकालके अग्निकी तथा सूर्यकी शोभा गौवें बढाती हैं।

६३ नः अङ्गिरसः पितरः उक्थैः वीळु चित् दृळ्हा अद्रिं रवेण रुजन्।— हमारे अङ्गिरस नामक पितरोंने सूक्तोंके द्वारा बडे सुदृढ शत्रुके पर्वतीय दुर्गका मानो शब्दसे ही नाश किया। मन्त्रों द्वारा-सुविचारोंके प्रचार द्वारा ऐसी शक्ति अंगिरसोंने निर्माण की कि, जिससे शत्रुके सुदृढ किले भी टूट गये। विचारवान् लोग सुविचारके प्रचारसे ऐसे परिवर्तन करते हैं और जनताके मनमें ऐसे क्रान्तिके विचार निर्माण करते हैं कि जिससे शत्रुका नाश सहजहीसे हो जाता है। ' **अस्मे बृहतः दिवः गातुं चक्रुः** ।- हमारे लिये इन्हीं अंगिरसोंने बडे स्वर्गधामको प्राप्त करनेका मार्ग बना दिया। अंगिरसोंने शत्रुका नाश किया और सुखदायी शासन व्यवस्था निर्माण करनेद्वारा मनुष्योंके लिये पृथ्वीपर स्वर्ग-धाम स्थापन करनेका मार्ग बताया। (मंत्र क्रमाङ्क १ की टिप्पणी देखो)

यहां भूमिपर स्वर्ग निर्माण करनेका विचार विशेष रूपसे कहा है। '**स्वः अहः केतुं उस्राः विविदुः**'— उन अङ्गिरसोंने ही अपने लिये प्रकाश, दिन, ज्ञान, किरण (अथवा गौवें) प्राप्त कीं। अर्थात् प्रकाश और ज्ञानका राज्य हुआ। अन्धकार दूर करके प्रकाशका फैलाव किया। (स्वः=स्व-र) स्व अर्थात आत्माका प्रकाश, अपने तेजका फैलाव, (अहः=अ-हः) जिसमें हानि नहीं ऐसा अवसर, (**केतुं**) अपना ध्वज फहरानेका समय, विजयका अवसर, ज्ञानके प्रचारका समय, (उस्राः) किरण और गायें। मानवी सुस्थितिके लिये प्रकाश और गायें बडी सहायक हैं।

६४ **ऋतं दधन् अस्य धीतिं धनयन्** = सत्यका धारण करनेवाले इस (प्रभु) की धारक शक्तिको धारण करनेसे धन्य होते हैं। दिव्य शक्तिसे तबही लाभ हो सकता है कि जब सत्य पालन और सरल आचरणकी उसको साथ हो। पश्चात् (अर्यः) सबकी स्वामिनी, (दिधिष्वः) धारण करनेवाली, (विभृत्राः) विशेष भरण पोषण करनेवाली, (अतृष्यन्तीः) तृष्णासे रहित, निष्काम भावसे युक्त, (**अपसः प्रयसा देवान् जन्म वर्धयन्तीः**) अपने कर्मोंके द्वारा तथा अन्न-दानसे देवोंको और अपने जन्मका संवर्धन करनेवाली प्रजाएं इसके पास (अच्छ यन्ति) पहुंचती हैं। प्रभुके पास वही जाते हैं जो अपनी शक्तियोंपर स्वामित्व रखते हैं, संयम रखते हैं, अपने अन्दरकी शक्ति बढाते और संयमसे उससे कार्य लेते हैं, यथाशक्ति अन्योंका पोषण करते हैं, अन्न दान करते हैं, दिव्य भावोंका संवर्धन करते हैं और अपने जन्मको सफल करने हैं, सब कार्य वितृष्ण होकर निष्काम भावसे करते हैं। येही प्रभुके पास पहुंचते हैं।

६५ **मातरिश्वा ईं यत् मथीत्, विभृतः, श्येतः गृहे गृहे जेन्यः भूत्** = वायुने जब इस अग्निको मथकर प्रकट किया, तब वह विशेष प्रकाशसे युक्त होकर श्वेत प्रकाशसे घर घरमें विजयी हुआ। व्यक्तिके शरीरमें प्राणायामसे आत्माका तेज प्रकट होता है और प्रत्येक देहमें यह धवल यशसे युक्त होता हुआ, विजयी होता है। समाजमें यज्ञका अग्नि वायुसे प्रदीप्त होता है और प्रत्येक यज्ञ-शालामें यही यज्ञाग्नि यज्ञ करवाकर विजय देनेवाला होता है। राष्ट्रमें अग्रणीरूपमें नेता वायुरूप क्षत्रियोंके साथ मिलकर प्रभावके कार्य करने द्वारा विजयी होता है। इस तरह सर्व क्षेत्रोंमें देखना उचित है।

सचा सन्, सहीयसे राज्ञे न ईं भृगवाणः दूत्यं आ विवाय = साथ साथ रहकर बलवान् राजाकी सहायता करनेके समान, इसने भृगुवंशके लोगोंकी सहायता करनेके लिये दूत-कर्म भी किया। देवता आनन्द प्रसन्न होनेपर दूतकर्म करके भी सहायता करते हैं। जिस तरह अर्जुनका सारथ्य भगवान् श्रीकृष्णजीने किया था, वैसाही अग्नि यहां दूत हुआ है।

६६ **महे पित्रे दिवे ईं रसं कः पृशन्यः चिकित्वान् अव त्सरत्** = बडे पितृभूत द्युलोकको समर्पण करनेके लिये तैयार किये इस सोमरसको, कौन भला इस देवताके साथ संबंध रखनेका इच्छुक ज्ञानी मनुष्य, गिरावेगा ? अर्थात् कोई भी नहीं गिरावेगा, इतना इसका बडा प्रभाव है। (**अस्ता धृषता अस्मै दिद्युं सृजत्।**) = अस्त्र फेंकनेवाले धैर्ययुक्त वीरने अपने शत्रुपर तेजस्वी अस्त्र फेंक दिया। तब (**देवः स्वायां दुहितरि त्विषिं धात्।**) सूर्य देवने अपनीही दुहितामें— उषामें— अपना तेज रख दिया। उत्तरीय ध्रुवकी उषा जब आती है, तब उषःकालमें बडी बिजलियाँ प्रकाशती हैं और प्रतिक्षण सूर्य-किरणोंसे उषाका तेज बढता ही जाता है। इस देशकी उषा प्रतिदिन आती है और सूर्योदयके समय विद्युत्का चमकना नहीं होता। उधर यह होता है।

६७ **हे अग्ने! स्वे दमे तुभ्यं यः आविवासाति, अनु द्यून् उशतः वा नमः दाशात्, अस्य द्विबर्हाः वयः वर्धो।** = हे अग्नि देव! अपने यज्ञस्थानमें तुम्हें बुलाकर प्रदीप्त करके जो तुम्हारा सत्कार करता है, प्रतिदिन तुम्हारा सत्कार करनेकी इच्छा करता हुआ जो तुम्हें अन्नका दान करता है, इसके दोनों ओर रहकर इसकी आयु (वा अन्न) तुम बढाओ। तुम्हारे भक्तकी तुम उन्नति करो। (**सरथं यं जुनासि तं राया यासत्**) = जिसके रथपर तूं रहता है उसे तू धन देता है, उसे विजय देता है। भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुनके रथपर सारथ्य करते थे और उन्होंने उसका विजय प्राप्त करनेमें अच्छी सहायता की, यह कथा इसके साथ तुलना करने योग्य है।

६८ **स्रवतः सप्त यह्वीः समुद्रं न, विश्वाः पृक्षः अग्निं अभि सचन्ते।** = बहनेवाली सात नदियाँ जैसी समुद्रको जा कर मिलती हैं, वैसेही सब प्रकारके अन्न अग्निको

प्राप्त होते हैं। जिस तरह प्रदीप्त अग्निमेंही आहुतियाँ डाली जाती हैं, उस तरह प्रदीप्त जाठर अग्निमेंही अन्नके कवल डालने चाहिये। (**जामिभिः नः वयः न विचिकिते। देवेषु प्रमतिं चिकित्वान् विदाः**) ।= भाइयोंको भी हमारी आयुओंका पता नहीं लगता, पर तू तो देवोंके अन्दर जो भाव हैं वे भी सबके सब जानता है और ठीक तरह उनको समझ लेता है। यह अग्निदेवका अधिकार है।

६९ यत् शुचि द्यौः तेजः नृपतिं इषे आ आनट् अभीके निषिक्तं रेतः अग्निः जनयत्, शर्धं अनवद्यं युवानं स्वाध्यं सूदयत् च। = जब मनुष्योंके स्वामी अग्निदेवके समीप शुद्ध दिव्य तेज अन्नके लाभके लिये प्रकट हुआ, तब समीप भागमें रहे अपनेही वीर्यको, प्रभावको अग्निने प्रकाशित किया, जिससे बडा बल उत्पन्न हुआ, अनिंद्य तारुण्य हुआ और उत्तम शक्ति जो ध्यान से प्राप्त होती है, यह सब परिपक्व होकर मिली। अग्निका तेज पवित्रता करनेवाला है, वह मनुष्योंका स्वामी या राजा है, क्योंकि यज्ञसे मानवोंकी उन्नति होती है और यज्ञ तो अग्निसे होते हैं। इसलिये यह अग्नि मानवोंका राजा है यह प्रदीप्त होता है तब उसमें अन्नकी आहुतियां डाली जाती हैं। इस यज्ञसे बडा भारी वीर्य निर्माण होता है, जो तीन रूपोंमें मानवोंको मिलता है, एक (शर्ध) सांघिक बल, दुसरा अनिंद्य अर्थात् वर्णन करने योग्य तारुण्य और तीसरा मननीय बुद्धिका, धारणावती बुद्धिका बल। यह सब यज्ञसे सिद्ध होता है।

७० यः एकः सूरः अध्वनः (पारं) सद्यः पति (सः) मनः न, सत्रा वस्वः ईशे। = जो एक अद्वितीय विद्वान् कर्तव्यकर्म करनेके मार्गका आक्रमण करके, मार्गको तत्कालही समाप्त कर लेता है, वह मनके समान वेगवान् वीर साथही साथ धनका भी स्वामी बनता है। धन प्राप्त करनेके लिये प्रथम अद्वितीय ज्ञान प्राप्त करना चाहिये, पश्चात् कर्तव्य कर्मके मार्गको समाप्त करना चाहिये, तब वह पुरुष धन प्राप्त करता है। धन-प्राप्तिका यह सरल मार्ग है।

(सुपाणी राजाना मित्रावरुणा गोषु प्रियं अमृतं रक्षमाणा) = उत्तम कुशलतासे कार्य करनेमें जिनके हाथ प्रवीण हैं ऐसा मित्र व वरुण ये राजा गौओंमें प्रिय अमृतरूपी दूध सुरक्षित रखते और बढाते हैं। राजाओंको उचित है कि वे अपने राज्यमें गौओंके दूधका प्रमाण बढानेका यत्न करें अर्थात् प्रत्येक गाय अधिक दूध देगी ऐसा उपाय करें और गौओंकी सुरक्षा करके उनकी भी वृद्धि करें।

७१ हे अग्ने ! पित्र्याणि सख्या मा प्र मर्षिष्ठाः ।= पिता प्रपितासे चली आई हमारी मित्रता विनष्ट न हो, अथवा वह बढती रहे। (**कविः सन् अभि विदुः**) = तू ज्ञाता है यह सब जानतेही हैं। तू ज्ञाता है यह प्रसिद्ध बात है। (**नभो न रूपं जरिमा मिनाति**) = मेघ जैसे रूप दर्शानेवाले प्रकाशको हटाते हैं, उसी तरह बुढापा सुंदरताको हटाता है। (**अभिशस्तेः तस्याः पुरा अधीहि**) = विपत्ति आनेके पूर्वही उसके कारणको जान लो और उसको दूर कर दो, जिससे आपत्तिके क्लेश नहीं होंगे।

इस सूक्तका प्रत्येक मंत्र और मंत्रका प्रत्येक खण्ड विशेषही बोधप्रद है, इसलिये इसका विशेष विचार पाठक करें और उसको जीवनमें ढालनेका यत्न करें।

यहां सातवा सूक्त समाप्त हुआ।

७२ शश्वतः वेधसः काव्या, नर्या पुरूणि हस्ते दधानः नि कः ।- शाश्वत रहनेवाले विधाता, विश्वनिर्माताके काव्योंको, मानवोंका सच्चा हित करनेवाले धनोंको अपने हाथमें-अपने अधीन-रखनेवाला यह देव संपूर्णतया अपने अधीन करता है। धन दो प्रकारके हैं- एक धन मानवोंका सच्चा हित करता है। और दूसरे धन ऐसे हैं जो मनुष्यको गिराते हैं। यह देव अपने पास ऐसे धन रखता है जो मनुष्योंका उत्कृष्ट हित करनेवाले हैं। देवताके काव्य मनुष्य गाये क्योंकि वे ही उसको मार्गदर्शक हो सकते हैं। वेदही देवताके-विधाताके-काव्य हैं। उनका ही गान ' सामगान ' करके सुप्रसिद्ध है। (**अग्निः विश्वा अमृतानि सत्रा चक्राणः, रयीणां रयिपतिः भुवत्** ।)- यह अग्निदेव सब अमर कर्तव्योंको साथ साथ करता हुआ धनोंका स्वामी होता है। धनोंका पति वह होता है कि जो सब अमरत्वका प्रदान करनेवाले शुभ-कर्तव्य निरलस वृत्तिसे करता है। परमात्मा सूर्यादि अमर देवोंका निर्माता है इस कारण वह सब वैभवोंका स्वामी है। वैसाही मनुष्य भी यदि अमृततत्त्व देनेवाले शुभ कर्म करेगा तो वह भी धनका पति होगा और यह धन ऐसा ही होगा कि जो सब मनुष्योंका निःसन्देह हित करनेवाला है।

७३ अस्मे परि सन्तं वत्सं इच्छन्तः विश्वे अमूराः अमृता न विन्दन्- हमारा हित करनेकी इच्छासे यहां

रहनेवाले इस बच्चे जैसे अग्निकी खोज करनेवाले सभी अमूढ अर्थात् ज्ञानी देवोंने इस अग्निको नहीं जाना था। वह कहां है, कैसा प्राप्त होगा, इसकी सहायता हमें कैसी मिलेगी, इत्यादि बातोंका पता उनको भी प्रारंभमें नहीं लगाथा। (**श्रमयुवः पदव्यः धियंधाः अग्नेः परमे पदे चारु तस्थुः।**)- परिश्रम करनेवाले, पद-चिह्नोंसे उसकी खोज करनेवाले, धारणावती बुद्धिका धारण करनेवाले बुद्धिमान् लोग अग्निके परम उच्च सुन्दर स्थानमें अन्तमें जाकर पहुंच गये। खोज करनेकी बात इस ऋषिके प्रथम मंत्रमें ही पाठक देखें। वहां पद-चिह्नोंसे कैसी खोज की गयी, उसका सुन्दर काव्यमय वर्णन है। अग्नि परम पदमें विराजता है, ऐसा यहां कहा है। परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी ये वाणीके चार रूप हैं। वाणी अग्निका रूप है, अतः इन चार वाणियोंके रूपोंमें अग्निका वास्तव्य है। पद-चिह्नोंसे खोज करनेकी रीति यह है कि वाणीके पदोंसे उसकी खोज हो। यह अनेक प्रकारसे हो सकती है। वैखरी, मध्यमा, पश्यन्ती, परा तक पहुंचकर उसके परे आत्माका दर्शन होता है। वह परम पदमें निवास करनेवाला आत्माग्नि है। इसी तरह अनेक मार्गोंसे अग्नियोंके रूपोंकी खोज होगी। काष्ठके घर्षणसे अग्नि उत्पन्न होती है, मेघोंसे विद्युदग्नि, सूर्यसे वैश्वानर अग्नि, इस तरह अनेक प्रकारके अग्नियोंकी प्राप्ति होती है। ये सब अग्नितत्त्वके रूप हैं और सबके सब मनुष्योंका हित करनेवाले हैं।

७४ हे अग्ने! शुचयः शुचिं त्वां तिस्रः शरदः घृतेन सपर्यान्- हे अग्ने! पवित्र होकर याजक लोग तुझ पवित्र देवताकी पूजा तीन वर्षतक घीसे करते थे। यहां घीका तीन वर्षतक हवन करनेका उल्लेख है। यहांका घी निःसन्देह गौके दूधसे निर्माण हुआ ही घी है, क्योंकि वेदमें गौका ही घृत है। सतत तीन वर्ष तक गौके घीका हवन होना यह एक बडी ही बात है। गो-घृतके हवनसे रोगबीज दूर होकर आरोग्यका संवर्धन होता है। (**सुजाताः तन्वः सूदयन्त यज्ञियानि नामानि दधिरे।**)- उत्तम कुलीन याजकोंके शरीर पवित्र हुए और उनको पवित्र यश भी मिले। तीन वर्ष गौके घीका हवन करनेसे याजकोंके शरीर पवित्र होते हैं और उनका यश भी बढ जाता है। यहां 'तन्वः' पद है, जिसमें तीन शरीरोंका बोध होता है। स्थूल, सूक्ष्म और कारण ये तीन शरीर प्रति मनुष्यके पास हैं, जो परिशुद्ध होनेसे मानवकी योग्यता उच्चतर होती है। हवनसे आहुति-द्रव्यके सूक्ष्म परमाणु बनते और वे शरीरमें पहुंचते और वहां शरीरसे मिलते हैं और वहांका स्थान निर्विष करते हैं। घी सबसे उत्तम विषघ्न पदार्थ है जो हवनमें मुख्य है। हवन-चिकित्सा एक बडाभारी शास्त्र है, जो अब लुप्त हो चुका है। इसलिये इस विषयमें हम अधिक स्पष्टीकरण लिख नहीं सकते, पर वेदका यह मुख्य विषय है।

प्रथम (**सुजाताः**) उत्तम कुलमें उत्पन्न होना यहां लिखा है। सुजनि शास्त्र है। आनुवंशिक संस्कार निःसंदेह होते हैं। विवाहके समय कमसे कम सात, पांच या तीन तक पूर्वजोंका विचार करना चाहिये ऐसा शास्त्रकार कहते हैं। इससे आनुवंशिक संस्कार विशेष प्रबल है यह ध्यानमें धारण करना चाहिये। कुलीन मनुष्यको अपनी उन्नति करनेके लिये सुविधा रहती है, यही यहां तात्पर्य है। अन्य मनुष्य उन्नति नहीं कर सकते, यह इसका आशय नहीं। (**सूदयन्तः**) 'सूद' का अर्थ 'पकाकर तैयार करना, सिद्ध करना, परिपक्व करना' है। जिस तरह अन्न पकानेवाले अन्नको सिद्ध करते हैं, उस तरह साधक अपने शरीरोंको, स्थूल-सूक्ष्म-कारण शरीरोंको, शरीरमनबुद्धिको योगादि साधनोंसे पवित्र करते हुए सिद्ध करते हैं, सुसंस्कार-संपन्न करते हैं। जिसके संस्कार अधिक उत्तम होते हैं वही (यज्ञिय नाम) पवित्र यश प्राप्त करता है। इस मंत्र-भागसे साधकके मार्गका पता लगता है।

७५ बृहती रोदसी आ वेविदानाः यज्ञियासः रुद्रिया प्र जभ्रिरे- द्युलोक और भूलोक इन दो लोकोंके अन्दर खोज करते करते उन याजकोंको इस रुद्र संज्ञक अग्निके अनेक सामर्थ्योंका पता लगा सामर्थ्य उनके सामने प्रकट हुए। यहां रुद्र नाम अग्निके लिये है। रुद्र, शंकर, और महादेव एकही है। वह नीलकण्ठ है, उसका गला नीले रंगका है। अग्नि लकडीको जलाती है उसकी ज्वालाके नीचे नीला रंग कोयलेका सूचक होता है, वही अग्निका नीलकण्ठ होना है। यह अग्नि शंकर (सुखकर) है, अन्नादि पकाकर सुख देता है, सर्दीमें गर्मी देकर सुख बढाता है, साथही साथ जलाकर भस्म कर डालनेसे संहार भी करता है। इस तरह अग्निका रुद्रत्व देखना योग्य है। (**नेमधिता मर्तः परमे पदे तस्थिवांसं अग्निं चिकित्वान् विदत्**)- युद्धस्थानमें रहनेवाले मानव परम पदमें रहनेवाले अग्निको जानकर प्राप्त करते हैं। 'नेम' का अर्थ है- 'नियम, मर्यादा,

समय, अन्न-विभाग '। ' नेमधिति= युद्ध, स्पर्धा, विभाग। हरएक मनुष्य सदा युद्धमें है। युद्ध अनेक प्रकारके हैं। धार्मिक, सामाजिक, राजकीय, आर्थिक ऐसे युद्धोंके भेद हैं। मनुष्य सदा किसी न किसी युद्धमें रहताही है। वह उस युद्धमें रहता हुआ ' अपना लक्ष्य परम पदमें रहनेवाले प्रकाशमय प्रभुकी ओरही रखे '। उसीका सदा मनन् करे और अपना कर्तव्य करे, जिससे वह विजयी हो सकेगा।

७६ **संजानानाः उपसीदन्, पत्नीवन्तः नमस्यं अभिज्ञु नमस्यन्** = वे ज्ञानी लोग उसकी उपासना करने लगे, अपनी धर्म-पत्नियोंके समेत नमस्कार करने, योग्य प्रभुके सामने घुटने टेक कर नमस्कार करने लगे। पहिले प्रभुका ज्ञान प्राप्त किया, उपासना की, धर्मपत्नियोंके समेत उस वंदनीय के पास पंहुचे और घुटने टेककर वंदना करने लगे। यहाँ घुटने टेककर सामुदायिक उपासना करनेका भाव स्पष्ट है। पत्नियों-के समेत यह सामुदायिक उपासना है, यह ध्यानमें रखने योग्य विशेष बात है। जिसके पांवमें मोटे कपडेका पाजामा हो, शरीरपर मोटे मोटे अंगरक्षाके लिये कपडे हो, वही घुटने टेककर नमस्कार करेगा। जो पतली धोती पहना हो, जिसके शरीरपर धोतीही हो वह चौकी लगाकर आसानीसे ध्यान कर सकता है। इसलिये हम ऐसा अनुमान कर सकते है कि यह रिवाज उस देशका दीखता है कि जहां अधिक भारी कपडे पेहननेके कारण चौकी लगाकर बैठना असंभव हो और घुटने टेकना आसान होता हो। यह हमारा विचार है और इसकी सत्यता अन्य प्रमाणोंसे प्रमाणित करनी चाहिये। यहां यह कहना चाहिये कि वेदमें कपासके कपडोंका उल्लेख नहीं है, ऊन-केही कपडोंका उल्लेख है। इससे कपडोंका भारी मोठा होना संभवनीय हो सकता है, कमसे कम शीतकालमें तो अनिवार्यही है। तथापि यह बात अन्वेषणीय है। (**सख्युः निमिषि रक्षमाणाः सखा स्वाः तन्वः रिरिकांसः कृण्वत**) = एक मित्रके आंख बंद होकर उसको निद्रा लगनेके समय जैसे दूसरे मित्र वहांकी सुरक्षा करने लगते हैं, वैसेही अपने शरीरोंको पापों और अशुद्धियोंसे रिक्त करनेमें ये लगातार दत्तचित्त हुए हैं, अर्थात् लगातार अपने आपको पवित्र करनेका अनुष्ठान करते हैं और पवित्र बनते हैं। यहां भी ' तन्व ' पद बहु-वचनमें हैं, कमसे कम तीन शरीर ऐसा अर्थ यहां है। स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीर अथवा शरीर, मन और बुद्धिको ये अशुद्धियोंसे रिक्त करते हैं। ये तीनों अशुद्धियोंसे भरे रहते हैं, उनको रीता करनेके अनुष्ठानसे ये परिशुद्ध होते है।

७७ **त्रिः सप्त गुह्यानि यत् पदा त्वे इत् निहिताः यज्ञियासः अविदन्** = तीन गुणा सात गुह्य तत्त्व जो तेरे स्थानमें रखे हैं, उनका पता याजकोंको लग गया। याजकोंको इक्कीस गुह्य तत्त्वोंका ज्ञान हुआ। इक्कीस प्रकारके यज्ञ-विधि हैं जो मानवोंका हित करते हैं यह जब विद्वानोंको विदित हुआ। (**तेभिः अमृतं रक्षन्ते**) = इन इक्कीस गुह्योंके द्वारा अमृत-की सुरक्षा की जाती है, यह ज्ञान सब विद्वानोंको हुआ। यहां का ' अ-मृत ' पद अविनाश या अमरत्वका सुख आदिका बोधक है। (**सजोषाः पशून् च स्थातॄन् चरथं च पाहि**) = एक मतसे अपने पशुओं और जंगमोंको सुरक्षित रखो। विश्वके गुह्य बातोंका ज्ञान प्राप्त करो, उस ज्ञानसे अपनी सब जनताकी सुरक्षा करो, एक होकर एक मतसे अपने पशुओं और स्थावर जंगमोंकी सुरक्षा करो। यही यहां स्वर्गधाम स्थापन करके अमृत सेवन करनेका मार्ग है। राष्ट्रमें जैसी मानवोंकी सुरक्षा होनी चाहिये, वैसाही पशुओं, गौवें, घोडोंकी सुरक्षा होनी चाहिये और स्थावर जंगमकी भी सुरक्षा होनी चाहिये। क्योंकि इनसेही मानव सुखी हो सकते हैं।

७८ **वयुनानि विद्वान्, क्षितिनां जीवसे क्षुरुधः आनुषक् विधाः**) = सब मनुष्योंके आचार विचार जानकर मानवोंके दीर्घ जीवनोंको सुखमय करनेके लिये, क्षुधाके कष्टोंको रोकनेके लिये, अर्थात् पर्याप्त अन्न प्राप्त होनेके उद्देश्यसे, सतत विशेष यत्न कर। प्रथम आचार-विचारको यथावत् जानना चाहिये, पश्चात् मानवोंके दीर्घ जीवनके लिये यत्न करना चाहिये अर्थात् अपमृत्युको दूर करना चाहिये यह बननेके लिये (क्षु-रुधः) शोक उत्पन्न करनेवाली क्षुधा आदिकोंके कष्टोंको दूर करनेके लिये सतत अविरत विशेष यत्न करना चाहिये। आचार-विचारोंका यथार्थ ज्ञान, दीर्घ जीवनके लिये प्रयत्न और क्षुधादि कष्टोंको दूर करना इन बातोंके लिये सतत यत्न करना चाहिये। (**देवयानान् अध्वनः अन्तर्विद्वान्, अतन्द्रः हविर्वाट् दूतः अभवः**) = देवयानके मार्गोंको अन्दरसे जानकर आलस्यरहित होकर हवि पहुंचानेवाला दूत तू हुआ है। दिव्य विबुधोंके आने-जानेके मार्गोंको अन्दरकी ओरसे यथावत् जानना चाहिये; जिससे पता लग सकता है कि किस तरह

दिव्य पुरुषोंका शुभ व्यवहार होता है। इसको जानकर वैसा आचरण निरलस वृत्तिसे करना चाहिये। दिव्य जनोंको हविष्यान्न पहुंचाना और हर प्रकारसे उनकी सेवा करना योग्य है। यह इसलिये करना चाहिये कि उसके सान्निध्यसे सन्मार्गका दर्शन हो जाय और अपना जीवन भी उसके समानही दिव्य बने।

७९ **स्वाध्यः सप्त यह्वीः दिवः आ** (प्रवहन्ति)= उत्तम रीतिसे दिव्य कर्म जिनके तट पर होते हैं, ऐसी सात नदियां स्वर्गधामसे बह रही है। यहां का (दिवः) पद हिमालयके प्रदेशका बोधक है, हिम पर्वतका बर्फ पिघलकर सात नदियां बह रही हैं, जहां (सु-आ-धीः) उत्तम प्रकार ध्यान धारणा तथा यज्ञ याग होते हैं, ऐसे नदी किनारे इन नदियोंके साथ हैं। (**ऋतज्ञाः रायः दुरः वि अजानन्**)= सत्यके ज्ञाताओं और यज्ञ-मार्गको जाननेवालोंने वैभवको प्राप्त करनेके द्वार खोलनेकी रीति जान ली है। अर्थात् यज्ञसेही सबकी उन्नति हो सकती है, यह उन्होंने जान लिया है। (**गव्यं दृळहं ऊर्वं सरमा विदत्**)= गौओंके रखनेका सुदृढ किला अर्थात् शत्रुने गौवें कहां रखी हैं, यह स्थान सरमाने जान लिया है। वहां इन्द्रादि वीर जायँगे, शत्रुका पराभव करके उससे गौवें प्राप्त करके वे उनको वापस ले आवेंगे। इस तरह जो शत्रुका पराभव करते हैं वे अपने वैभवको प्राप्त करते हैं। अतः कहा है कि (**येन मानुषी विट् भोजते**)= जिससे मानवी जनता सुख भोग सकती है।

८० **ये अमृतत्वाय गातुं कृण्वानासः विश्वा स्वपत्यानि आतस्थुः**= जो अमरत्वकी प्राप्तिका मार्ग तैयार करते हैं, वे सब शोभन कर्मोका अनुष्ठान करते हैं। क्योंकि शुभ कर्मके करनेके विना अमरत्वकी प्राप्तिकी संभावनाही नहीं है। (**महद्भिः पुत्रैः माता अदितिः पृथिवी धायसे मह्ना वि तस्थे, वेः**)= अपने महान् पराक्रमी पुत्रोंके साथ बडी अदिति माता सबके धारण पोषण करनेके लिये अपनी महिमासेही विशेष रूपसे विस्तृत रूपमें स्थिर रही है, जिस तरह पक्षिणी अपने बच्चोंके पोषणके लिये यत्न करती है। (अदितिः अदनात्) अदिति वह है कि जो भोजन देकर पालना और पोषणा करती है। पृथ्वीको अदिति इसलिये कहते हैं कि वह धान्य देकर सबका पोषण करती है (महद्भिः पुत्रैः) पुत्र बडे वीर हों, प्रभावी और पराक्रमी हों, यह शिक्षा पुत्रोंको देनी आवश्यक है। ऐसे वीर पुत्रोंके साथ माता अन्योंका धारण-पोषण करे। यहां माताका (मह्ना) महत्त्व है। जिस माताको आठ आदित्योंके समान आठ वीर पुत्र हों, वह माता धन्य है।

८१ **दिवः अमृताः यत् अक्षी अकृण्वन्, अस्मिन् चारुं श्रियं अधि नि दधुः**= द्युलोकके स्थानमें अमर देवोंने जब दो आंख, सूर्य और और चन्द्र, बनाये, तब इस अग्निमें उन्होंने सुन्दर शोभा, सुन्दर दीप्ति, रख दी। अर्थात् इस अग्निको भी उन्होंने तेजस्विताके साथही बनाया। सूर्य चन्द्र, विद्युत् और अग्नि इस तरह बनाया गया। (**अध सृष्टाः सिन्धवः न नीचीः अरुषी क्षरन्ति**) इसके पश्चात् निम्न गतिसे चलनेवाली नदियोंके समान तेजस्वी दीप्तिवाली ज्वालाएं उससे चल पडीं। (**हे अग्ने! प्र अजानन्**) हे अग्नि देव! यह सब उन्होंने जान लिया है। ज्ञानी इसको ठीक तरह समझते हैं।

इस आठवें सूक्तमें कई बातें विशेष महत्त्वकी कहीं गयीं हैं, जो उन्नति चाहनेवाले साधकोंको सदा मननीय हो सकती हैं। सब तत्त्वज्ञान यहां अग्निके मिषसे कहा गया है, अग्निका निमित्त करके मानवी जीवनका तत्त्वज्ञान यहां कहा गया है। पाठक इसका विचार करें।

यहां आठवें सूक्तका मनन समाप्त है।

८२ **पितृवित्तः रयिः न यः वयोधाः**— पितासे प्राप्त हुए धनके समान (यह अग्नि देव) अन्न धारणा करनेवाला है। जिस तरह पिता-पितामहसे आनेवाली संपत्ति मिलनेसे अलकी कमाई करनेकी आवश्यकता नहीं होती, उस धनसे अन्नादि सब सुखभोग मिलते हैं, उसी तरह यह अग्नि सब सुखभोग देता है। (**चिकितुषः न शासुः सु प्रणीतिः**)- ज्ञानी शासक राजाकी तरह यह उत्तम रीतिसे चलाता है, उन्नतिके मार्गका आक्रमण करनेमें वह वैसा सहायक होता है कि जैसा उत्तम ज्ञानी राजा अपनी प्रजाका सहायक होता है। (**स्योनशीः अतिथिः न प्रीणानः**)— सुखसे विश्राम करनेवाले अतिथिके समान संतोष देनेवाला, अतिथि-सत्कारसे सन्तुष्ट होकर सुखपूर्वक आराम लेनेवाले अतिथिके समान आनन्द देनेवाला यह है। जिस तरह ऐसा सन्तुष्ट हुआ अतिथि उत्तम उपदेश द्वारा गृहस्थका हित करता है, उसी तरह यह भी हित करता है। (**विधितः सद्म, होता इव, वि**

तारीत्) यज्ञ-कर्ताके घरका, हवन-कर्ताके समान, तारण करता है। जिस तरह अग्नि-होत्र करनेवाला अग्निशालाका संरक्षण करता है, उस तरह यह यज्ञ तथा सत्कार करनेवालेके घरका तारण करता है। अग्निदेवका जहां सत्कार होता है वहां सुरक्षा रहती है। अन्नकी प्राप्ति, सन्मार्गका दर्शन, शान्ति, सुख और संरक्षण इतनी बातें इसकी उपासनासे होती हैं।

८३ **देवः न सविता, यः सत्यमन्मा, क्रत्वा विश्वा वृजनानि नि पाति**— सविता देवके समान जो सत्य व्रतका मननपूर्वक पालन करता है, वह अपने कर्तृत्वसे सभी पापोंसे साधकको बचाता है। सत्यका पालन करनेवाला बडे प्रशस्त कर्म करता है, जिससे सब कुटिलताओं और पापोंसे बचाव होता है। **(पुरु प्रशस्तः अमतिः न सत्यः, आत्मा इव शेवः, दिधिषाय्यः भूत्)**- अनेक लोगों द्वारा जिसकी प्रशंसा की जाती है, प्रगति करनेवालेके समान जो सत्यनिष्ठ है, आत्माके समान जो सेवाके योग्य है, वही सबका आश्रय-दाता हुआ है। '**अमति**' (अमति इति)— जो गतिमान्, उन्नतिकी ओर जानेवाला, बलवान् है, जो उन्नतिके लिये हलचल करता है, वैसा यह अग्निदेव भी प्रगति करनेवाला है। '**दिधिषाय्यः**' (धातुं योग्यः) आधार देने योग्य, जिसके आश्रयमें रहना योग्य है। संस्कृत भाषामें '**दिधिषाय्य**' का अर्थ ' आधार, आश्रय, असत्य मित्र, मद्य ' ऐसा है। '**दिधिषु**' का अर्थ ' पुनर्विवाहित पति ' है। यहां मूल धातुसे बननेवाला यौगिक अर्थ लेना चाहिये। ' आधार देने योग्य, आश्रय लेने योग्य ' यह इसका यौगिक अर्थ है। यह प्रभु आश्रयके योग्य है। जो इसका आश्रय करेगा, वह कदापि गिरेगा नहीं। सत्यकी पालना करने और प्रशस्त करनेसे पाप दूर हो सकते हैं। यदि किसीका आश्रय करनाही हो तो जो सबसे प्रशंसनीय है, जो सत्यनिष्ठ है, जो बलवान् और सबके हित करनेके लिये हलचल करता है और आत्मा जैसा सबको उत्साह देनेवाला है, उसीका आश्रय किया जाये।

८४ **यः देवः न विश्वधायाः, हितमित्रः न राजा पृथिवीं उपक्षेति**- जो देवताके समान सबका धारण पोषण करनेवाला है, जो हितकर्ता है और मित्र जैसा पालनकर्ता राजा है, जो पृथ्वीपर रहता है, वह अग्नि सबका पालनहारा, हित करनेवाला और मित्रके समान मान्य करनेवाला पृथ्वीपर रहता है। अग्निका पृथ्वी स्थानही है। जो सबका धारण कर सकता है, जो जनताका हित करता है, जो जनताके साथ मित्र जैसा व्यवहार कर सकता है, वही पृथ्वीपर राजा होने योग्य है। **(पुरःसदः शर्मसदः न वीराः, अनवद्या पतिजुष्टा इव नारी)**= युद्धस्थानमें सब वीरोंके अग्रभागमें रहकर युद्ध करनेवाला, घरमें रहकर वहांकी सुरक्षा करनेवाला, अथवा इधर उधर न भटकते हुए अपने घरमें अपने देशमें रहकर, उसकी सुरक्षा करनेवाले वीरोंके समान तथा निष्पाप पतिव्रता नारीके समान जो पापरहित है, वह पृथ्वीपर वंदनीय है।

८५ हे अग्ने! उस तुझको सब मानव ध्रुव-स्थानोंमें अथवा यज्ञ-स्थानमें प्रदीप्त करके हवनके द्वारा सुपूजित करते हैं। इस अग्निमें बहुतही तेजस्वी धन अर्पण किया जाता है। अतः तू सब पूर्ण दीर्घ आयु देकर धनोंका धारण करके, धनोंका हमें दान करनेवाला हो।

८६ हे अग्ने! धनवान् लोग जो यज्ञ करते हैं, वे पर्याप्त अन्न प्राप्त करें। ज्ञानी, जो दान करते हैं, वे दीर्घ आयु, पूर्ण आयु, प्राप्त करें। युद्ध-स्थानोंमें युद्ध करनेके लिये जानेवाले वीर, अन्न, धन और बल प्राप्त करें। देवोंको अन्न अर्पण करनेके लिये हम अन्नका भाग धारण करें और समयपर उसका अर्पण करें।

८७ यज्ञकी सेवा करनेकी इच्छा करनेवाली, दूधसे भरे हुए दुग्धाशयवाली, देवताकी भक्ति करनेवाली, अथवा सूर्य-किरणों में विचरनेवाली, यज्ञके लिये रखी गौवें दूध पिलाती हैं, यज्ञके लिये दूध देती है। साथ साथ नदियाँ सुमतिको चाहती हुई पर्वतके पाससे दूर दूरसे बहती हैं। इन नदियोंके तीरोंपर यज्ञ होते हैं, जिसका वर्णन ऊपरके तीन मंत्रोंमें है।

८८ हे अग्ने! सुमति चाहनेवाले पवित्र लोगोंने स्वर्गधाममें तेरी सहायतासे ही यश प्राप्त किया। उषा प्रकाशसे युक्त और रात्रि अन्धेरेसे युक्त बनायी गयी है।

इस तरह काले और लाल रंगोंका संमीलन हुआ है। ऐसाही विभिन्न वर्णवाले लोगोंका यज्ञ द्वारा संगठन होता रहे, यह सूचना यहां दी है।

८९ हे अग्ने! जिन मानवोंको वैभवसंपन्न बनानेके लिये तुमने तैयार किया है, वे हम सब इसी यज्ञ-मार्गसे धनवान् और यशस्वी बनें। आकाश और अन्तरिक्ष इस अग्निके प्रकाशसे भर गया है। सब भुवन छायाके समान संघठित

हुआ है। जिस तरह छाया पदार्थके साथ रहती है, इस तरह सब भुवन इस अग्निदेवके साथ संगत हुआ है।

९० हे अग्ने! तेरे द्वारा सुरक्षित हुए हम सब अपने घोडोंसे शत्रुके घोडोंका पराभव करेंगे, अपने नेताओंके द्वारा शत्रुके नेताओंको जीतेंगे, अपने वीरोंसे शत्रुके वीरोंको जीत जायेंगे। हम अपने पितृपितामहोंके धनोंके स्वामी बनकर, विद्वान्‌के सदृश ज्ञानी होकर सौ वर्षकी दीर्घ आयु प्राप्त करेंगे।

९१ हे विधाता अग्निदेव! ये सूक्त तेरे मन और हृदयको प्रिय हों। तेरे उत्तम नेतृत्वसे हम धनोंको प्राप्त करेंगे और उसका अच्छा उपयोग भी कर सकेंगे। तथा प्रभुके भक्तका यश बढायेंगे।

ये मंत्र सरल और स्पष्ट हैं, इसलिये ८५–९१ तकके ७ मंत्रोंका विशेष स्पष्टीकरण, आवश्यकता न होनेके कारण, नहीं किया है।

यहां नवम सूक्त समाप्त हुआ है।

सोमरसका पान

पराशर ऋषिका दसवां सूक्त सोमदेवताका है। यह सूक्त नवम मण्डलके ९७ वे सूक्तका एक भाग, अर्थात् ३१ से ४४ तकके १४ मंत्र, हैं। इसका अर्थ पूर्व स्थानमें दिया है, परंतु विशेष मंत्रभागपर, विचार करनेयोग्य पदोंपर, कुछ टिप्पणी यहां देते हैं।

९२ **ते मधुमतीः धाराः प्र असृग्रन्**- सोमसे मीठे स्वादवाले रस-प्रवाह निकल रहे हैं। सोम कूटकर उससे रस निकाला जा रहा है। (**पूतः अव्यान् वारान् अति एषि**) यह रस भेडोंके बालोंकी छाननीमेंसे छाना जा रहा है, छानकर दूसरे पात्रमें रखा जाता है। (**गोनां धाम पवसे**) छाननेके बाद यह रस गौओंके स्थानको पवित्र करता है अर्थात् इस रसमें गौओंका दूध मिलाया जाता है, मानो इससे गौओंका स्थान पवित्र हुआ। (**अजानः अर्कैः सूर्यं आपिन्वः**) रस तैयार होनेके बाद वह तेजोंसे सूर्यको भर देता है। मनुष्यमें उत्साह बढाता है।

९३ वह सोमरस यज्ञके मार्गका अनुसरण करता है, यज्ञके धामको प्रकाशित करता है। आनन्द बढानेवाला वह सोमरस कवियोंके स्तोत्रोंके पाठोंके साथ इन्द्रको समर्पित होता है।

९४ **दिव्यः सुपर्णः देववीतौ धाराः पिन्वन् अव चक्षि**— द्युलोकमें अर्थात् पर्वत-शिखरपर उत्पन्न होनेवाला सुंदर पत्तोंवाला सोम यज्ञकर्ममें धारा-प्रवाहसे रस-रूपमें नीचे उतरता या चूता है। (**सोमधानं कलशं आविश**)— सोम रखनेके पात्रमें रखा जाता है। (**सूर्यस्य रश्मिं उप इहि**)— सूर्य-किरणोंमें रखा जावे। सोमरस कलशोंमें भर कर छाना जानेके बाद सूर्य-किरणोंमें रखा जाता है।

९५ **तिस्रः वाचः प्र ईरयति** = तीन सवनोंमें तीन स्वरोंमें स्तोत्र-पाठ करते हैं। (**ऋतस्य धीतिं ब्रह्मणः मनीषां**) = यज्ञका धारण हो, यज्ञका कर्म सतत चले और ज्ञानकी मनीषा पूर्ण हो। ये दो कार्य अर्थात् कर्म और ज्ञान इन दो मार्गोंका प्रचार होना चाहिये। (**गोपतिं सोमं गावः पृच्छमानाः यन्ति**) = गौओंके पति सोमरसके प्रति गौवें जाती हैं अर्थात् सोमरसमें गौओंका दूध मिलाया जाता है। (**वावशानाः मतयः सोमं यन्ति**) = सोमपानकी इच्छा करनेवाली बुद्धियां सोमके पास जाती हैं। सोमपान करनेकी अथवा सोमका वर्णन करनेकी बुद्धियां जनोंकी हो जाती हैं।

९६ **धेनवः गाव सोमं वावशानाः**- गौवें दूध देनेवालीं सोमको चाहती हैं अर्थात् गोदुग्ध सोमरसमें मिलाया जाता है। (**विप्राः मतिभिः सोमं पृच्छमानाः**) = ज्ञानी लोग स्तोत्रोंसे सोमका वर्णन करते हैं। (**सुतः सोमः अज्यमानः पूयते**)- निचोडा गया सोमरस छाना जाता है। (**त्रिष्टुभः अर्काः सोमे सं नवन्ते**)— त्रिष्टुप् छन्दके सामगान गाये जाते हैं। यह वर्णन सोमयागके अन्दर सोम तैयार करनेकी पद्धतिका है।

९७ छाना जानेवाला सोमरस ठीक तरह स्वच्छ हो जावे। (**बृहता रवेण इन्द्रं आविश**)— सोमरस बडे शब्दके साथ, सामगानके बडे आलापोंके साथ इन्द्रको दिया जावे। (**पुरंधिं जनय**)— बुद्धि बढे सोमपानसे बुद्धिको उत्तेजना मिले।

९८ **जागृविः पुनानः सोमः चमूषु आसदत्**-उत्साह बढानेवाला छाना गया सोमरस पात्रोंमें भरा जाता है। (**सुहस्ताः अध्वर्यवः यं सर्पन्ति**) उत्तम हाथवाले अध्वर्यु सोमके पास जाते हैं, उसको ठीक करते हैं।

९९ छाना गया वह सोमरस धारक शक्ति बढाता है। इससे (**ऊती**) उत्तम सुरक्षा होती है। यह सोम स्तोत्रकर्ताको धन देता है।

१०० बढाया जानेवाला और छाना जानेवाला वीर्यवर्धक सोमरस हमारा सुरक्षा करता हैं। जिस रसके पान करनेके बाद हमारे प्राचीन पूर्वजोंने गौओंकी खोज करनेके लिये शत्रुके कोलोंकी खोज की। रसपानसे उत्साहित होकर वीरोंने शत्रुके स्थानका पता लगाया और शत्रुको परास्त किया।

१०१ **समुद्रः राजा (सोमः) .. प्रजाः जनयन् अक्रान्** = जलके साथ मिला हुआ सोम (वनस्पतियोंका) राजा विविध वीरोंमें उत्साह उत्पन्न करके शत्रुपर आक्रमण करने लगा। सोमरस पीनेके बाद वीरोंमें शत्रुपर हमला करनेका उत्साह उत्पन्न हुआ। (**वृषा सुवानः इन्दुः सोमः अव्ये पवित्रे ववृधे**) = बलवर्धक निचोडा गया सोमरस भेडीका ऊनका छाननीपर जलके साथ समिश्रित होकर बढने लगा। जलका वारवार छिडकाव करके उसको छान लेनेका कार्य होने लगा।

१०२ बलवर्धक सोमरसने बडे काम किये। जलोंके साथ मिश्रित होकर वह देवोंको पीनेके लिये दिया गया। इन्द्रने उसका पान किया। सूर्यकी ज्योति बढने लगी।

१०३ सोम, वायु, मित्र, वरुण, मरुत्, अन्य देव और द्यावापृथिवीको आनंदित करता है।

१०४ (**वृजिनस्य हन्ता**) सोम पाप और कुटिलताका नाश करता है, **(अमीवां मृधः च अपबाधमानः)** रोगों और शत्रुओंका नाश करता है। (**गोनां पयसा अभिश्रीणन्**) गौओंके दूधके साथ मिलाया जाता है। पश्चात् इन्द्र इस रसको पीता है। अन्य ऋत्विज् भी पीते हैं।

१०५ सोमरस मधुरताका झोजही है। वह वीरता और भाग्यको बढावे। इन्द्र इस सोमरसको पीवे। यह हमारा धन बढावे।

इन चौदह मन्त्रोंमें सोमरस तैयार करनेकी विधि है। सोम कूटनेके बाद वह ऊनकी छाननीसे छाना जाता है, उसमें पानी और गौका दूध मिलाया जाता है। पश्चात् देवताओंको देनेके बाद पिया जाता है। इतनाही वर्णन यहां है। सूक्तके आवश्यक मंत्रभाग ऊपर दिये हैं, शेष मंत्रोंका संक्षिप्त सारांश दिया है। इसमें और अधिक निर्देश नहीं हैं। सोमरस सिद्ध करनेके ये निर्देश पाठक इन मंत्रोंसे जान सकते हैं। सोमका यह सुंदर काव्य है, जो काव्यकी दृष्टिसे देखनेसे बडा आकर्षक प्रतीत होता है।

यहां पराशर ऋषिका दसवा सूक्त अर्थात् सोमसूक्त समाप्त होता है। पराशरका जो तत्त्वज्ञान है, वह इन मन्त्रोंमें है। मन्त्रोंका मनन करनेसे पाठकोंको वह प्राप्त हो सकता है।

परमात्माका दर्शन

पराशर ऋषिके दर्शनमें अग्निके ९१ मन्त्र हैं और सोमके १४ मन्त्र हैं। सोमके मन्त्रोंमें सोमका रस निकालनेके सिवाय और कुछ भी अन्य बातोंका उल्लेख नहीं मिलता। संभव है कि श्लेष आदिसे कुछ बोध मिल भी सके। पर अग्निके मंत्रोंमें मानवी जीवनके तत्त्वज्ञानके निर्देश अधिकतया मिलते हैं। इनका निर्देश हमने टिप्पणीमें विशेष रूपसे किया है और स्पष्ट रूपसे उसका ज्ञान होनेके लिये हम यहां भी संक्षेपसे प्रकरणसे देते हैं। इस अग्निके वर्णनके मिषसे यहां ऋषिने परमात्माका भी दर्शन कराया है, जैसा देखिये—

१ प्रथम दो मन्त्रोंमें कहा है कि परमात्मा चोरके समान गुप्त स्थानमें छिपा है, उसकी खोज करनेके लिये इस विश्वमें जो उसके चिह्न दीखते हैं, उनके अनुसंधानसे ज्ञाना गुरु जनोंके साथ साथ चलना चाहिये, जिससे अन्तमें वह प्राप्त हो जाता है, तब उसकी सामूहिक उपासना करना चाहिये और उसे फिर दूर होने नहीं देना चाहिये। यह प्रथम मन्त्रकी उपमा सर्वोत्तम है और ठीक तरह परमात्माका ज्ञान देनेमें बडी सहायक होनेवाली है। इसके अग्निपरक, आत्मा और परमात्मा-परक अर्थ पूर्व स्थानमें टिप्पणीमें दिये हैं।

२ तृतीय मन्त्रमें कहा है कि जो इस ज्ञानको प्राप्त करेंगे वे सत्यका व्रत पालन करनेसे इस भूमिपर स्वर्गधाम स्थापन करेंगे। यह भी ठीकही है, क्योंकि यह ज्ञान सब ज्ञानोंमें श्रेष्ठ है और इस ज्ञानसे भूमिपर स्वर्गका राज्य निःसंदेह स्थापन हो सकेगा।

३ **कः ई वराते ?** (मं. ६) इस परमात्माको कौन रोक सकता है ? अर्थात् इसको रोकनेवाला कोई नहीं है। यह इसके अतुलनीय सामर्थ्यका वर्णन है।

४ पुष्टि, स्थान, भोजन, शान्ति, उत्साह, वेगको यह देता है और सबकी उन्नति करता है, यह मंत्र ५ में कहा है।

५ राजा जैसा शत्रुओंको प्रतिबंध करता है, वैसाही यह भक्तोंके सब संकट दूर करता है (मं. ७)

६ **विभुः दूरेभाः**— यह विभु अर्थात् सर्वत्र व्यापक है और दूरतक प्रकाश देनेवाला है । (मं. ९)

७ रमणीय घरके समान सबका आश्रयस्थान यह प्रभु है । यह सबका क्षेम अर्थात् कल्याण करता है । (१३)

८ (**अमं दधाति**)- यह बल बढाता है, इसीसे सबको बल प्राप्त होता है ।(१७)

९ (**यमः जातं, यमः जनित्वं**)— जो भूतकालमें बना था, जो भविष्यकालमें बननेवाला है और वर्तमानकालमें बना है वह सब सर्व नियन्ता प्रभुही है । यह सर्वेश्वरवादका मुख्य तत्त्व यहाँ कहा है। विश्वरूपही प्रभु है यह सिद्धान्त इस वर्णनसे यहां कहा है । (१८)

१० (**मर्तेषु मित्रः**) मर्त्योंमें यह सबका अमर मित्र है, नाशवानोंमें यह अविनाशी है । (२१)

११ यह साधुके समान कल्याणकारी, यज्ञके समान हितकारी, और उत्तम ध्यान लगानेयोग्य है । (२२)

१२ यह अजन्मा पृथ्वी अन्तरिक्ष और द्युलोकका धारण करता है । सब विश्वको आधार देनेवाला यही एक है । (२५)

१३ (**यः वीरुत्सु प्रजाः प्रसुषु अन्तः महित्वा विरोधत्**) यह औषधियोंमें और सभी पदार्थों और प्राणियोंमें रहता है, सर्वव्यापक है । (२९)

१४ (**स्थातुः चरथं व्यूर्णोत्**)— स्थावर-जंगमोंको प्रकट करता है । सब सृष्टिको प्रकट करता है (३१)

१५ (**विश्वेषां देवानां एकः देवः महित्वा परिभुवत्**)— सब देवोंमें यह एकही परमात्मदेव ऐसा है कि जो अपनी महिमासे सबमें श्रेष्ठ और सबका नियामक हुआ है । (३२)

१६ (**ते एता व्रता नकिः मिनन्ति**)- इस प्रभुके नियम कोई तोड नहीं सकता । (४७)

१७ (**स्थातां चरथां च गर्भः**)- स्थावरों और जंगमोंमें जो अन्दर रहता है । (५३)

१८ (**विश्वा अमृतानि सत्रा चक्राणः रयीणां रयिपतिः भुवत्**)-- सब अमर भावोंको साथ साथ बनानेवाला यह प्रभु सब धनोंका स्वामी हुआ है । (७२)

१९ (**हितमित्रः विश्वधायाः देवः**)— सबका हितकारी और मित्र यह देव विश्वका धारण करता है ।(८४)

संक्षेपसे विश्वाधिपति प्रभुका वर्णन स्पष्ट रूपसे करनेवाले मंत्र इन सूक्तोंमें हैं । उपनिषद्में कहा है—

अग्निर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रूपंरूपं प्रतिरूपो बभूव। एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा रूपंरूपं प्रतिरूपो बहिश्च ॥ (कठ उ. २।५।९)

' अग्नि जैसा सब भुवनोंमें प्रविष्ट होकर प्रत्येक रूपमें प्रतिरूप बना है, वैसाही एक सर्वभूतान्तरात्मा प्रत्येक रूपके लिये प्रतिरूप हुआ है और बाहर भी है । ' यहां विश्वात्माके लिये अग्निकी ही उपमा दी है । प्रत्येक वस्तुमें अग्नि व्यापक है और उस वस्तुका रूप लेकर रहा है, वैसाही ठीक परमात्मा है, इसलिये परमात्माके लिये अग्निका उत्कृष्ट साम्य है ।

सब विश्व दीख रहा है। जो दीख रहा है वह रूपवान् है और रूप अग्निका गुण है, इसलिये अग्नि सब विश्वभर व्यापक है । अग्नि व्यापक होनेसेही सब विश्व दीख रहा है । एकही अखण्ड एक रस अग्नि सब विश्वका सब रूप लिये खडा है । वैसाही परमात्मा है, क्योंकि परमात्मा अग्निका अग्नि है । इसीलिये इन पराशर ऋषिके अग्निसूक्तोंमें उक्त प्रकार परमात्माका वर्णन हुआ है, अग्निका वर्णन करनेकाही तात्पर्य परमात्माका वर्णन करना है क्योंकि—

तत् एव अग्निः । (वा. य. ३२।१)

' वह ब्रह्मही अग्नि है । ' जो अग्नि दीखता है वह ब्रह्मका रूप है । इस कारण अग्निका वर्णन ब्रह्मका या परमात्माका वर्णन होना सयुक्तिक है ।

' पाठक इस तरह अन्यान्य विषयोंका अर्थात् शत्रुनाशन, उन्नतिका साधन-मार्ग आदि विषयोंका ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं, जो टिप्पणीमें स्थान स्थानपर दियाही है ।

यहां पराशर ऋषिका दर्शन समाप्त

पराशर ऋषिका दर्शन

विषयसूची

सामर्थ्य

(लेखक- श्री॰ लालचन्दजी, कृष्णनगर, लाहौर)

हमें ऐसे मनुष्योंकी आवश्यकता है जो अपनी जिम्मेदारी समझते हों, जो अपना काम रुचिसे कर सकते हों, और अपने अधीन जो लोग काम करते हों, उनसे सुगमतासे काम ले सकते हों।

उन्नत देशमें विशाल हृदय तथा शक्तिशाली युवक तथा युवतियोंकी मांग होती है। ऐसे होनहार, जो अपने देशमें अपने सुन्दर जीवनके कारण कीर्ति-लाभ कर रहे हों और अन्य देशोंमें जाकर अपने देशका यश उन्नत कर सकें। ऐसे साहसी, उद्यमी मनुष्य कैसे बने, उनमें स्वयं काम करने तथा अन्य लोगोंसे काम लेनेका सामर्थ्य कैसे हो, यही इस लेखमालामें विचार किया जायगा

(१) समयका सदुपयोग

आजका दिन, आजके दिनकी यह घडी, नहीं इस घडीका यह पल अमूल्य है, इसे वृथा मत खोओ। समयही सम्पत्ति है, समयही ऐश्वर्य है, समयही वैभव है, समयही श्री है, समयही शोभा है। समयका खोना, इन सबका खोना है, जो समय कार्य करनेका है, उस समय जो सोता है, ब्राह्ममुहूर्तके बाद जो खाटपर तन्द्रामें पडा रहता है, वह अपने जीवनका क्षय कर रहा है। अपनी अमूल्य सम्पत्तिका अपने हाथों नाश कर रहा है।

जो सामर्थ्य बढाना चाहते हैं, वे समयका सदुपयोग करके, अपना शरीर, अपनी प्राण-शक्ति, अपनी मनःशक्ति, अपनी मेधा-शक्ति, सभी शक्तियोंमें दिव्यता लाकर उनका विकास कर रहे हैं, निकम्मी लोगोंको काल खा रहा है और वे मूर्ख इसे आयुकी वृद्धि समझे बैठे हैं।

समयका जो सदुपयोग नहीं करता, समय उसका साथ नहीं देता, वह पीछे रह जाता है, समय आगे चल देता है वह हाथ मलता रह जाता है। कालने कभी किसीका साथ नहीं दिया। काल सबको खा जाता है। हां, कुछ संयमी हैं जो जीवन-रहस्यको जान गए हैं, वे अपने जीवनमें सौन्दर्य लाकर, दूसरोंके जीवन सुन्दर बनानेमें लगे हैं। समय उनका सहायक है। इन दिव्यात्माओंके जीवनकालसे समयका नाम रखा जाता है, जैसे रामका समय, कृष्णका समय, बुद्धका समय, दयानन्दका समय, गांधीका समय, आदि। वेही पुरुष समयके ऊपर विजय पाते हैं और अमर कीर्ति तथा यश पाकर अमर हो जाते हैं। ऐसे महानुभाव समयका सदुपयोग करते हैं। समय उनका साथ देता है। समय उनका मित्र बन जाता है। वे सामर्थ्यवान् समझे जाते हैं, आप उन्नत होते हैं, आनेवाली सन्तानको अपनी जीवनचर्यासे उन्नतिका मार्ग दिखा जाते हैं। ऐसे पुरुष समयको खोते नहीं। उनके दिनरातकी सभी घडी नियत कर्तव्योंमें बंटी होती है। वे सदा कर्तव्यनिष्ठ, कर्मशील, धर्मके तत्त्वको जाना करते हैं और धर्मानुसार आचरण करके धर्मके मूर्तिमान् स्वरूप होते हैं। उनके आचरणसे धर्माचरण जाना जाता है। महापुरुषोंकी जीवनियोंमें उनकी जीवनचर्या, विघ्नबाधाओंके होते हुए भी सच्ची लगनसे लगातार कार्य करना, उद्देश्यको सामने रखकर ध्येयके अनुकूल जीवनभर कार्य करना, सदा निर्भय रहना, आदि गुणही अनुकरणीय हुआ करते हैं जिन्हें देखकर लोगोंको प्रकाशस्तंभकी भान्ति अपनी जीवन-नौका खेनेमें सहायता मिला करती है। हमें सामर्थ्यवान् पुरुष तथा स्त्रियें चाहियें जो प्रलोभनोंके आगे झुके नहीं, जो अपने निश्चयपर स्थिर रह सकें, जिनमें देश-हित, देशगौरव सुरक्षित हो, जिनपर हमें पूर्ण विश्वास हो कि देशकी मानमर्यादाका पालन वे प्राणपनसे करेंगे।

सामर्थ्यकी प्राप्तिमें समयका सदुपयोग परम आवश्यक है, इसे वृथा खोना अपने आपसे अपने आपको नष्ट करना है, आत्महन महापातकी माना जाता है। समयका सदुपयोग करना सीखो।

(२) जीवनका ध्येय

जीवनका ध्येय सत्य है। जीवनकी साधना सत्यकी

खोज है, और सत्यकी प्राप्तिके उपाय हैं व्रत, दीक्षा, दक्षिणा और श्रद्धा, अर्थात् दृढ संकल्प, दक्षता, उत्साह और पूर्ण विश्वास। जो सत्य है, वही शिव है और जो सत्य और शिव है, वही सुन्दर है; इसलिए सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम्की जीवनकालमें उपलब्धि जीवनका ध्येय है। इसे प्राप्त करके सब कुछ जो प्राप्तव्य है प्राप्त हो जाता है, इसे जानकरही जो कुछ जाननेयोग्य है, जाना जाता है।

मनुष्य सामाजिक प्राणी है, इसे समाजमेंही रहना है। इसलिए अपने अन्दर सामर्थ्य प्राप्त करनेके पश्चात् समाजको समर्थ बनाना मनुष्यका कर्तव्य है। इसी कर्तव्यको धर्मकी मर्यादाका संस्थापन कहते हैं; इसके लिए साधुओंकी रक्षा तथा दुराचारी लोगोंका सुधार अथवा सुधार संभवन हो तो नाश आवश्यक है।

प्रत्येक मनुष्य कुछ जिम्मेदारी लेकर जन्म लेता है, उसका कुछ उद्देश्य होता है। महान् आत्मा, मुक्तात्मा तो जगत्का कल्याण करनेके निमित्तही जन्म धारण करते हैं। साधारणतया प्रत्येक आत्मा अपने गुण-कर्म-स्वभाव-अनुसार शरीर तथा परिस्थिति पाता है; पर भगवान्ने मनुष्यको यह सामर्थ्य दिया है कि वह अपनी परिस्थितिको अपने अनुकूल कर ले और यदि उसमें कृतकार्य न हो तो भी अपने ध्येयसे, अपने उद्देश्यसे पीछे न हटे, वसे दृढ संकल्प तथा पूरी लगनसे, प्राणपनसे पूरा करनेका भर सक, यत्न करे। प्रत्येक मनुष्यको चाहिये कि वह परिस्थितिका गुलाम न रहकर परिस्थितिको बदलनेवाला बने। पर देखा गया है कि सत्व, रज अथवा तम गुणकी प्रधानताके अनुकूलही प्रत्येककी क्षमता होती है, इसलिए क्रमसे तमसे रजमें और रजसे सत्वमें गति करता हुआ रज-सत्वमिश्रित अवस्थामें पराक्रम और शक्तिसे रजको भी दबाकर मनुष्य शुद्ध सत्व गुणमें विचरे और अपने स्वरूपका ज्ञानलाभ करे।

विना आप स्वयं अपने स्वरूपको पहचाने, मनुष्य अपनेको शरीरही समझता रहेगा और दुःखी रहेगा। स्वरूपका ज्ञान परम आवश्यक है। स्वरूप-ज्ञानसे मनुष्य अभय हो जाता है, उसे पता लगता है कि मैं शरीर नहीं, शरीरी हूं, अमरसत्ता हूं और शरीरका स्वामी हूं, ऐसा ज्ञान होनेपरही वह कर्तव्य करनेमें स्थिर और दृढ होगा और जीवन लक्ष्यके बींधनेमें समर्थ होगा।

जीवनका ध्येय अथवा जीवनका लक्ष्य एकही बात है। लक्ष्यवेध एक आवश्यक शिक्षा है। इसमें एकाग्रता, निश्चलता, स्थिरता और दृढताकी शिक्षा मिलती है। लक्ष्य सामने हो, आदर्श ओझल न हो तो मनुष्यकी जीवनचर्या ठीक होगी। विना उद्देश्यका जीवन तो समुद्रकी पवनसे डावाडोल होनेवाले विना कॅप्टनके जहाज जैसा है, जिसकी यात्राका निश्चयही नहीं, जिसकी पहुंचनेको कोई जगहही नहीं। तेलीका बैल थक जाता है किन्तु कुछ भी मार्ग तै नहीं करता। ध्येयके लिए पुरुषार्थ करनाही जीवनकी सार्थकता है।

(२) जीवनकी साधना

जीवनकी साधना, ध्येयके अनुकूल होनी चाहिये। पवित्र ध्येयको अपवित्र उपायोंसे नहीं प्राप्त कर सकते। हमारे जीवनका ध्येय सत्य है। सत्यकी खोजमें जीवनका रहस्य छिपा हुआ है। सत्यकी खोजमें अपनी जीवनचर्या, साथियोंकी जीवनचर्या, परिवार तथा कुटुम्बकी जीवनचर्याकी पड़ताल करनी होगी, और जहां भी ध्येयके मार्गमें बाधा होगी उसे हटाना होगा। सत्यकी खोज बलहीन नहीं कर सकता, इसलिये शारीरिक तथा मानसिक स्वास्थ्यकी ओर भी ध्यान देना होगा। स्वस्थ शरीरमेंही स्वस्थ मन निवास कर सकता है। शारीरिक रोगकी अवस्थामें मन भी खिन्न हो जाता है, अन्तःकरणका प्रकाश भी धुंधलासा हो जाता है, जीवनज्योति मन्द पड जाती है।

स्वस्थ मन तथा स्वस्थ शरीर हमारे जीवनकी साधनाका पहला अंग है। पवित्र हृदय तथा ऋतंभरा बुद्धि ऐसी बुद्धि जिसमें धारणा-शक्ति है, साधनाका दूसरा अंग है।

बुद्धि निर्मल होगी तभी विवेक-शक्ति काम कर सकेगी। विवेकशक्तिका काम भले बुरे, पुण्य पाप, श्रेय प्रेय, विद्या अविद्याकी विवेचना करना है। विवेचनासेही तो हम अपनी साधनामें निर्भ्रान्त होकर एक निश्चित मार्गपर चल सकेंगे, इसलिए विवेक-शक्ति हमारी साधनाका तीसरा और सर्वश्रेष्ठ अंग है।

विवेक-शक्तिहीसे मनुष्यकी विशेषता है, यही उसका

आधार है, इसलिये वास्तवमें विवेकही मानवधर्म है। विवेक-शक्तिही मनुष्यको अन्य पशुओंसे पृथक् करती है। जबतक विवेक, चैतन्यता तथा सावधानतासे कार्यमें तत्पर है तभीतक मनुष्यकी जीवन-साधना सार्थक है। मनुष्यका विवेक क्षीण हुआ और मनुष्य जीवन-साधनासे फिसला और उसका पतन हुआ। विवेकशील मनुष्य जब कर्मक्षेत्रमें अपने आपको लगाता है तो कर्म सुकर्म होता है और उसका फल उत्तम होता है।

विवेक मनुष्यके मनोराज्यका प्रधान मन्त्री है वह ठीक परामर्श देता रहता है और शरीररूपी नगरीका सुप्रबंध सभी देवगण करते रहते हैं। विवेक मन्द हुआ और देवगणोंमें भी अशुद्धि आ जाती है और दोनों ज्ञान और कर्म इन्द्रियें शरीररूपी रथको तोड डालती हैं। मन सदा शक्तिशाली रहे, तभी इन्द्रियें वशमें रहेंगी और जीवन-साधना ठीक चलेगी। मन बडी अद्भुत शक्ति है, इसके विना तो कुछ कार्य होताही नहीं। जीवन-साधना बन्द हो जाय यदि मन दुर्बल हो जाय, मन शक्तियुक्त हो पर हो बुद्धिके अधीन, तभी जीवन-साधना ध्येयके अनुकूल चलती रहती है और जीवन सुखमय होता है।

(४) स्वास्थ्य

मनुष्यके अन्दर एक छिपी हुई शक्ति है जिसके रहते हुए प्रत्येक रोगकीटाणुका पराजय होता है। रोगकीटाणुओंसे यह शक्ति लडती है, इसके विद्यमान रहते हुए रोगकीटाणुओंका बस नहीं चलता; इस शक्तिकी विजय होती है और मनुष्यका स्वास्थ्य ठीक बना रहता है। उसकी उन्नतिमें बाधा नहीं पडती। इस शक्तिको शरीरमें उत्पन्न करने, स्थिर रखने तथा बढानेके कई साधन हैं, जैसे कि उत्तम बलकारक सात्विक भोजन, स्वच्छ जलवायु, सूर्यकी किरणें, व्यायाम, प्राणायाम, आदि। किन्तु इनमेंसे सबसे महान् साधन वीर्यरक्षा है। वीर्यरक्षाकी ओर आजकल उचित ध्यान नहीं दिया जाता। कामउद्दीपन विहार, आसक्ति, अनुराग, अश्लील दृश्य, कामवासनायुक्त वातावरण, सजावटकी अभिरुचि, आदि कुत्सित जीवनचर्याके सहायक अंगही स्वास्थ्यको क्षीण करनेके कारण है।

विवाहित जीवन अमर्यादित होनेसे, स्त्री-संसर्गसे संबंधित वृथा वीर्यक्षयके कई अवसर होनेसे, जीवनका ह्रास निरंतर हो रहा है। सभ्य कहलानेवाले लोग प्रायः कामी, लम्पट तथा विषयी देखे जाते हैं। आपसके स्त्री-पुरुषोंके संबंधोंमें कामुकता अधिक बढ रही है और यही विशेष कारण राजयक्ष्माका और बालमृत्युका है। बालक दुर्बल उत्पन्न होते हैं क्योंकि अतिकाम-लिप्साके कारण उनके अवयव पुष्ट नहीं हो पाते, कामुकताके कारणही समयसे पूर्व बालक उत्पन्न हो जाते हैं अथवा गर्भस्राव हो जाता है। इसमें स्त्रियोंकी हर प्रकारसे हानिही हानि है और समष्टिरूपसे जातिका ह्रास है। नवविवाहित युवक-युवतियें तो विशेषतः मर्यादा, नियम, मान, लज्जा आदि सभीको तिलांजलि देते प्रतीत होते हैं और वेगसे शक्ति क्षीण करते हुए परस्पर क्षय करनेकी स्पर्धामें लगे हुए हैं। गृहस्थियोंका परस्परका संबंध भी मर्यादाहीन हो रहा है। ऐसी अवस्थामें कैसे बलवान् बालक हो और कैसे घरमें सुख-सम्पत्ति हो। जहां मर्यादा शिथिल होगी वहां दुःख, भय, रोग और शोक होंगे, वहां ऐश्वर्य, सुख, स्वास्थ्य और प्रसन्नता कैसे हो सकती है। स्वास्थ्यके भी नियम हैं। युक्त आहार, विहार, कर्मचेष्टा, सोना जागना तथा नैतिक व्यवहार और व्यायाम आदिसेही मनुष्य स्वस्थ रह सकेगा। औषधियें नियमित जीवनचर्याका स्थान नहीं ले सकतीं। स्वास्थ्य एक आवश्यक कर्तव्य है, जो इस कर्तव्यकी अवहेलना करता है वह जगत्में सुखका जीवन नहीं बिता सकता, उसके पास ऐश्वर्य तथा शोभा कभी नहीं रहते, वह मानो लक्ष्मीसे शापित रहता है और अपना जीवन निरंतर कष्टमें व्यतीत करता है। सभीको चाहिये कि स्वस्थ रहना सीखें।

(५) स्वस्थ मन

स्वस्थ शब्दपर थोडा ध्यान देना आवश्यक है। 'स्वस्थ' का अर्थ है अपने आपमें स्थित। स्थिर बुद्धि, स्थितप्रज्ञ युक्त आदि शब्द जो हमारे पुराने ग्रन्थोंमें आते हैं उनका यही अभिप्राय है। जब मनुष्य डांवाडोल नहीं होता, जब उसका चित्त चंचल नहीं होता, जब वह अपने अन्दर कर्तव्य करनेका सामर्थ्य अनुभव करता है, तभी हम उसे स्वस्थ कहेंगे। इससे इतर अवस्थामें सभी लोग अस्वस्थ कहे जाएंगे।

अस्वस्थ अवस्थाका कारण मन और शरीर दोनोंही हो सकते हैं। शरीरके कारण मन और मनके कारण शरीर स्वस्थ अथवा अस्वस्थ हो सकता है। जब मनुष्य कर्तव्य-विमुख होने लगता है तो अवश्य समझ लेना चाहिये कि अब शरीरमें मनद्वारा कोई रोग-प्रवेश होनेवाला है; और धीरे धीरे मनको रोककर कर्तव्यपर दृढ न किया जाय तो जहां मनुष्य कर्तव्यच्युत हो जाता है, वहां साथही रोगी भी हो जाता है और अंतमें यश और श्री भी हाथसे खो बैठता है। ऐसे शारीरिक रोगीकी मानसिक चिकित्साही एक साधन है। ऐसा भी हो सकता है कि कहीं चोट लगने आदिसे अथवा गन्दी वायु या अशुद्ध जलके कारण वायुमण्डल बिगडनेसे शारीरिक रोग हों; किन्तु ऐसी अवस्थामें भी युक्त मनवाला मनुष्य कम रोगी होगा और यदि हो भी जाय तो शीघ्र स्वस्थ हो जायगा।

मन और शरीरका घनिष्ट संबंध है। मानसिक रोग प्रायः आलस्यसे आरंभ होते हैं। आलस्यसे प्रमाद, प्रमादसे स्मृति-दोष, और पश्चात् मनकी अवस्था रोगी हो जाती है। लोग वास्तवमें आलस्यमें फंसे हुए अपने आपको आराम करते हुए कहा करते हैं। ऐसे लोग कर्तव्यको टाल देते हैं और समझते हैं कि इस प्रकार वह कार्य उनसे टल गया। वास्तवमें कर्तव्य न करनेसे जो चित्तमें ग्लानि उत्पन्न होती है वही मानसिक रोगोंका बीजरूप बना करती है; इस सीधी बातको भी लोग नहीं समझना चाहते। कर्तव्य नियत समयपर न करनेसे अथवा टाल देनेसे टला नहीं करता, वास्तवमें उसका करना फिर अधिक कठिन हो जाता है और प्रायः मनुष्य अवसर खो बैठनेपर अपने आपको कर्तव्य करनेके लिए समर्थ भी नहीं पाया करता। इस प्रकारके कर्तव्य-विमूढ अपने अन्दरसे ऐसी अमूल्य शक्तिका ह्रास करते हैं जिसका पाना उनके लिए फिर असंभवसा हो जाता है। यह शक्ति जो वीर्य, बल और उत्साहकी मूल शक्ति है वह मनःशक्ति है, इसीको मनुष्यकी तेजस्शक्ति अथवा ओजस्शक्ति कहते हैं। स्वस्थ मनमेंही यह शक्ति सात्त्विक वीर्य बलके साथ विकसित होती है।

(६) चेतनता

वह शक्ति जिसके अन्दर रहनेसे मनुष्यका विवेक जागृत रहता है, उसमें द्वन्द्व सहनेका सामर्थ्य होता है, मनुष्यकी चेतनता है, जो अन्तर्ज्योति अर्थात् शरीरमें शुद्ध वीर्यके कारण होनेवाली कान्ति तथा ओजशक्तिही है। इस अन्तर्ज्योतिसे हृदयाकाशमें निरंतर प्रकाश रहता है, उत्साह बना रहता है और साहस स्थिर रहता है। इसी शक्तिसे मनमें ज्ञानका प्रकाश होता है और मनुष्यके अन्दर दिव्यताका विकास होता है। मनुष्य नित्य नव-जीवन अनुभव करता है और उसमें सत्य तथा प्रेम स्थिर रहता है। आनन्द इसी अन्तर्हित शक्तिपर निर्भर है।

चेतन मनुष्य सावधान रहता है, वह भूल नहीं करता और यदि किसी विशेष कारणसे भूल हो भी जाय तो उसकी चेतनता उसे सुझा देती है और वह सावधान होकर पुनः ठीक कार्य कर लेता है। चेतनता हमारे अन्दर ज्ञानमयी शक्ति है, इसीसे हम ज्ञानेंद्रियों तथा कर्मेन्द्रियोंसे काम लेते हैं। चेतनताके रहते हुएही मनुष्य श्रेष्ठ काम कर सकता है। चेतनामेंही विवेक अपना प्रकाश दिखाता है। मूढ अवस्थामें जब मोहका दबाव हो तो मनुष्य निद्रालुसा रहता है, तन्द्रा उसे घेरे रहती है। चेतनताकी अवस्थामेंही मनुष्य अपनी शक्तियोंका उपयोग करता है।

निद्रा या स्वप्नमें मनुष्यको आराम या मनका व्यापार तो अनुभव होता है पर स्वप्नमें किये हुए कार्योंसे कभी जगत्में ऐश्वर्य-प्राप्ति नहीं हुई, कभी स्वप्नकी मिली सम्पत्ति जागनेपर हाथ नहीं लगी। चेतनता कभी खोनी नहीं चाहिये। ऐसे भोजन जिनसे चेतनता कम हो, ऐसे व्यसन जिसे चेतनतापर आघात हो, सब त्याज्य हैं। मादक द्रव्य तथा सिग्रेट, चाय, काफी आदि चेतनतापर कुप्रभाव डालनेवाले होनेसे सर्वथा त्याज्य हैं। अपनी चेतनता सदा स्थिर रखनी चाहिये, तभी अभ्युदय हो सकता है।

(७) सावधानता

सावधान मनुष्यही दक्ष है, चतुर है, अपने काममें निपुण है। जो लोग बिना विचारे उतावलेपनसे कार्यमें लग जाते हैं, वे बहुधा पछताते हैं। सावधान मनुष्य सतर्क रहता है, उसे कोई चालाकीसे धोखा नहीं दे सकता। इतनाही पर्याप्त नहीं है कि मनुष्य स्वयं सबसे सरलसे वर्ते, यह भी आवश्यक है कि जो कुटिल स्वभावके लोग

है, उनसे सदा सावधान रहे। मनुष्य सदा विश्वास करे यह ठीक है किन्तु किसीके दावमें आकर अपना अस्तित्वही खो बैठना कोई भली बात नहीं। हमें जीवन सुन्दर बनानेके लिए दृढ संकल्प तथा दक्षताकी नितांत आवश्यकता है, इनके बिना जीवन एक बोझ हो जाएगा और पग पगपर असफलता मिलेगी। सुन्दर जीवन साधनका परिणाम है, और विवेकयुक्त कार्यही साधनामें पूर्णता ला सकते हैं। जो सावधान हैं उसका किसीसे द्वेष भी नहीं होगा। उतावला मनुष्य बिना विचारे कार्य कर बैठता है। जैसा कि किसीपर विश्वास करके उसे धन उधार दे दिया और पश्चात् उसके धन न लौटानेपर द्वेष बढे। यदि भली प्रकार देखभालकर बर्ताव किया जाता तो क्यों द्वेष बढता। एक पुरुष बिना भली प्रकार जाने अपने पुत्र अथवा पुत्रीका विवाह-संबंध कर देता है पश्चात् बेमेल संबंध सिद्ध होनेपर परस्पर द्वेष बढता है। विवाह-संबंधमें तो वास्तवमें पहले जानकारी फिर मित्रता, पश्चात् संबंधका विचार आना चाहिये। जो कोई काम भी असावधानीसे किया जाएगा उसमें सुमधुर परिणाम हो यह निश्चित नहीं कहा जा सकता। हमें भगवान् ऐसी सुमति देवें कि हम मानव हृदयोंको ठीक ठीक पहिचान कर उनसे व्यवहार करें जिसमें पश्चात् कभी चिंता न हो। सावधानताके बिना मनुष्य सदा चिंतित रहेगा। सावधानतासे मनुष्य निश्चिंत होकर सुख पाता है। सावधान रहकर जो व्यवहार किया जाता है उसमें प्रायः परिणाम अनुकूलही होता है और परस्पर सुख बढता है।

मनुष्यने संसारमें विपरीत गुणकर्म-स्वभावके लोगोंसे भी बर्तना है इसलिए सावधान रहे बिना उतावलेपनसे कार्य करके पीछे दुखी होना मूर्खता है और ऐसी चिन्तासे आयु क्षीण होती है। सदा सावधान रहकर जगत्में सबसे कुशलतासे व्यवहार करनेमें कभी दोष नहीं लगता, निरंतर सुखकी वृद्धि होती है।

(८) स्फूर्ति

मनुष्य अपने अन्दर जब चैतन्य अनुभव करता है, जब वह अन्दर आत्मज्योतिका निरंतर प्रकाश देखता है तो उसकी इच्छा कार्य करनेकी होती है, वह संकल्प करता है कि अमुक कार्य अवश्य करूंगा और उसके लिए योजना तैय्यार करता है। जब मनुष्यमें आलस्य नहीं होता, जब उसे अपनी शक्तिपर भरोसा होता है और अपने अन्दर अपना भविष्य अधिक सुन्दर और उन्नत बनानेकी क्षमता अनुभव करता है और उत्साहसे कार्य आरंभ करता है, नई नई उमंग, नया नया चाव उसके अन्दर प्रकट होता है, तो यह अवस्था स्फूर्तिके उदयकी है। ऐसा अवसर कभी नहीं खोना चाहिये। ऐसे अवसरमें आत्मा अपनी चेतन अवस्थामें कार्य करनेको उत्सुक है। शरीर, मन, बुद्धि अवश्य सहायक होंगे, ऐसे समय नए विचार स्फुरित होते हैं, नये भाव जागृत होते हैं, यह अवसर निर्माण करनेकी भावनाका है, इस अवसरको खो देनेसे मनपर धक्का लगता है और मन दब जाता है। मन सदा शक्तिशाली रहना चाहिये तभी मन शरीरपर अच्छा प्रभाव डाल सकता है। स्फूर्ति जब हो तो अपने आपको धन्य समझो। बुद्धिको अपने अनुकूल करके कार्य आरंभ कर दो, अवश्य सफलता होगी। स्फूर्ति दैवी प्रेरणा है, आपका दिव्य मन आपको कुछ करनेको कहता है, आपका अन्तःकरण शुद्ध है और कुछ निर्माण अथवा पूर्ति करनेको उत्सुक है, अपनेको भाग्यवान् समझो। मनको उत्साहित करो, और कार्यमें लग जाओ। भगवान्के नियमपर भरोसा रखकर सदा सत्य और प्रेमके सहारे व्यवहार करो। सत्य और प्रेम अनुपम आकर्षण शक्ति रखते हैं, ये दोनों आपके पास वैभव, समृद्धि, ऐश्वर्य और शोभा ले आएंगे। आप अपनी हृदय-भूमि तैय्यार रखें और अतुल ऐश्वर्य तथा बाहुल्यको धारण करें। आपका आपके द्वाराही कल्याण होना है। आत्माकी वाणी जब प्रेरणा करे तो उसका आदर करो और वैसाही करो। सौभाग्यवानोंकोही ऐसी शुभ प्रेरणा मिला करती है। प्रतिभाके हृदयकी यह सूचना है। स्फूर्तिके अनुसार पुरुषार्थ करो और उत्साहसे लगातार कार्य करते रहो, अवश्य सफल होगे।

(९) साहस

साहसी वीर कभी भय आनेपर पीछे नहीं हटा करते। वीर तो एक बार निश्चय कर लेता है फिर चाहे कुछ भी हो वह अपने प्राणोंतककी परवाह न करके कार्य-साधनामें लग जाता है। साहसी कभी घबराता नहीं। कभी

हताश नहीं होता। वास्तवमें साहसी कार्य करते समय फलकी अभिलाषाही नहीं करता, उसका ध्यान पूर्ण-रूपसे कार्य साधनमें लग जाता है, फल चाहे कुछ भी हो, जय हो चाहे पराजय। साहसी आगे बढना जानता है। साहसीको रुकावट विघ्नबाधाओंकी परवाह नहीं है, वह अपना मार्ग साफ करता हुआ आगे आगे बढता जाता है। साहसी पुरुषोंने वे आश्चर्यमय कार्य कर दिये हैं, जिन कार्योंको जोखिमसे बचनेवाले समझदार कह लानेवाले लोग हाथमें भी नहीं लेते।

एक घरमें आग लग गई है, दो बालक कमरेमें पडे हैं। माता-पिता बाहर खडे रो रहे है किंतु अपने प्राणोंके भयसे अन्दर नहीं जाते। देखतेही देखते एक साहसी पुरुष अन्दर घुसता है, आगका मुकाबला करता है और दोनों बालकों सहित बाहिर आ जाता है। युवकों और युवतियों-को सदा साहसी होना चाहिये और निरंतर आपत्तिका मुका-बला करनेको तैय्यार रहना चाहिये। साहसी पुरुषोंने शत्रुओंकी तोपोंतकका मुकाबला करके उनका चलना बन्द कर दिया है। डूबतेको बचाना साहसीकाही काम है। युवकोंको खतरेसे कभी डरना नहीं चाहिये। शरीर अवश्य नष्ट होना है। वीरताके कार्य कभी कभीही करनेको मिलते हैं। वीरको यश तथा कीर्ति सदा आलिंगन करने-को उद्यत रहते हैं। कायर और भीरु लोग कभी साहस नहीं किया करते और केवल देखते रहते हैं। देश और जातिको साहसी युवक और युवतियोंकी आवश्यकता है।

(१०) उत्साह

उत्साह सफलताका सहोदर है। जहां उत्साह है वहां सफलता साथ रहती है। उत्साही पुरुष वह कार्य कर जाते हैं जो साधारण जन कभी विचारमें भी नहीं ला सकते। उत्साह कभी मन्द न होने दो। अपने जीवनमें कुछ करना है, आप आगे बढना और देशकी अवस्था उन्नत करनेमें भाग लेना है, ये श्रेष्ठ कार्य हैं, इन्हें उत्साहसे करनाही चाहिये। उत्साह ऊपर उठनेकी भावनाका नाम है। इसमें साहसपूर्वक जो यत्न है वही पुरुषार्थ है और इसमें सफलता निहित है, किंतु फलकी आकांक्षा न करके कर्तव्यरूपसे कार्य-संपादनही उत्साहको अभीष्ट है। उत्साही फलके चक्करमें नहीं पडता। उत्साह किसी कार्यके आरंभसे उसके अंततक बना रहे तो अवश्य कार्य करके चित्त प्रसन्न होता है और थोडे परिश्रमसेही कार्य पूर्ण हो जाता है। मनुष्यको कठिनाइयोंमें भी कभी निराश न होना चाहिये। पुरुषका ध्येय ऊपर उठना है, नीचे गिरना नहीं। प्रत्येक मनुष्यका कर्तव्य है कि अपने आपको अपने आपसे ऊपर उठावे, नीचे गिराए नहीं। उत्साही, यत्नशील पुरुषार्थीका भगवान् सहायक होता है। जब मनुष्य किसी कार्यको आरंभ कर देता है और पूर्ण उद्योगसे उसे करता हुआ भगवान्से सहायता चाहता है तो भगवान् अवश्य उसके सहायक होते हैं। कार्यकी पूर्णतापर वह सफलता भगवान्के अर्पण होनी चाहिये, वरना मनुष्य सफलताके मदमें चूर हुआ हुआ अभिमानके कारण गिरता है। उत्साह कभी न छोडे, चाहे कितनी बाधाएं उपस्थित हों। जिस पुरुषका भगवान् सदा सखा है उसकी सदा विजय होती है। भगवान्की सहायतासे विजय होती है किंतु यश और कीर्ति पुरुषकी होती है। भगवान् अपने प्रिय बालकोंको यशस्वी देखकर प्रसन्न होते हैं।

(११) तेज और ओज

छान्दोग्य-उपनिषद्में आरुणि मुनिका अपने पुत्र श्वेत-केतुको जो उपदेश है वह यहां देनेयोग्य है, इससे तेज और ओज तथा प्राणशक्तिसंबंधी रहस्य स्पष्ट हो जायगा।

'खाया हुआ अन्न पचकर तीन भागोंमें विभक्त हो जाता है, उसका जो स्थूल भाग होता है वह मल (विष्ठा) हो जाता है, जो मध्यम भाग होता है वह मांस बनता है, और जो सूक्ष्मतम भाग होता है वह मस्तकके विचार-तन्तु बन जाता है, वहही मनोवृत्तिका स्थान है।'

'पिये हुए जल पचकर तीन भागोंमें विभक्त हो जाते हैं। उनका जो स्थूल भाग होता है वह मूत्र बन जाता है, जो मध्यम भाग होता है वह रक्त बन जाता है और जो सूक्ष्म-तम भाग होता है वह प्राण हो जाता है, जीवन-पोषक बन जाता है।'

'स्निग्ध पदार्थ खाए हुए तीन भागोंमें विभक्त हो जाते

हैं, स्थूल भाग अस्थि (हड्डी) बन जाता है, मध्यम भाग मज्जा बन जाता है और जो सूक्ष्मतम भाग होता है वह वाणी (वाग् इन्द्रिय) होता है, घृत आदिके सूक्ष्मतम भागसे स्वर तथा तन्तु बनते हैं, यही वाणीका ओज है।"

इस कथनसे यह स्पष्ट हुआ कि स्निग्ध पदार्थोंके खानेसे पुरुषमें तेज होता है। अन्नसे मन, जलसे प्राण और स्निग्ध पदार्थ जो तेजयुक्त होते हैं उनसे वाणीका ओज होता है। हमारा भोजन अन्न, जल तथा दूध-घृतादि स्निग्ध पदार्थोंवालाही होता है और यही सात्त्विक भोजन होता है, इससे जीवन-तत्त्व, मन, प्राण तथा ओज आदि बनते हैं। ये सब क्रियाएं तभीतक होती हैं जबतक पाचनशक्ति रहती है। पाचनशक्ति शरीरके अन्दर अग्निका रूप है, यही तेजरूप सारे शरीरमें कान्ति तथा शक्ति स्थिर रखनेमें समर्थ है।

वाग्भटाचार्य लिखते हैं:—

" रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा और शुक्र शरीरमें रहनेवाली इन सात धातुओंका तेज (तत्त्व) ओज होता है। वह हृदयमें रहते हुएही सारे शरीरमें व्याप्त रहता है। इसी ओजके बढनेसे तुष्टि (मनका उत्साह) पुष्टि (शरीरके सब अंगोंकी मजबूती) और बलका उदय होता है, इसी ओजके नाश होनेसे अथवा जीर्ण होनेसे निश्चयही मनुष्यका नाश हो जाता है। इसी ओजके स्थिर रहनेसे मनुष्यकी जीवन-शक्ति (स्वस्थता) स्थिर होती है और उत्साह, प्रतिभा, धैर्य, लावण्य, सौन्दर्य और सुकुमारता आदि सारी सम्पत्ति मिलती है।"

शुद्ध वीर्यसे तेज और ओज बनता है। वीर्य मनुष्यके रक्तके साथ सारे शरीरमें विद्यमान् रहता है। पैरोंकी स्थिरता, मस्तिष्कमें विचारशक्ति, हृदयकी उदारता, नेत्रोंकी ज्योति, कानोंकी श्रवणशक्ति, आदि सभी अवयवोंका तेज और बल पवित्र शुक्रपर निर्भर है। अश्लील विचारोंसे उत्तेजित होनेसे वीर्य कटिप्रदेशके नीचे आता है, नीचे आया हुआ पुनः सारे शरीरमें नहीं घूम सकता। रक्तसे अलग होकर पुनः वीर्य रक्तमें नहीं मिलता, बाहिर हो जाता है और इस प्रकार शक्तिका ह्रास होता है। यदि उत्तेजना न हो, विचार सदा पवित्र रहे, कल्याणकी भावना ही शिवसंकल्पके साथ निरंतर श्रेष्ठ कर्मोंमें प्रवृत्त रहे तो वीर्य सारे शरीरमें रहता हुआ प्रभाव, प्रतिभा और यशका कारण बनता है। वीर्यही असली शक्ति है, उसीके शरीरमें रहनेसे तेज और ओज, स्फूर्ति, कान्ति, उल्लास, साहस, उत्साह, उमंग, धैर्य, दक्षता, सहनशीलता, आत्मसम्मान और मुखमंडलपर लालिमा, चमक तथा प्रसन्नता सदा बनी रहती हैं और मनुष्य विजयी होता है। मनुष्य उन्नतिशील प्रगतिशील उसी मात्रामें रहता है जिस मात्रामें वह ओजस्वी होता है। पवित्र भाव और सत्संगति ये ओजके स्थिर रहनेके साधन हैं।

(१२) बल

ओजशक्तिही मनुष्यका वास्तविक बल है, इस शक्तिसे ही मनोबल, बुद्धिबल और आत्मबल मनुष्यमें स्थिर रहते हैं। वीर्यकी हानिसे बल क्षीण होता है और मनुष्य लाचार हो जाता है। शुद्ध जलवायु, सूर्यकी प्रातःकालकी किरणें शुद्ध सात्त्विक भोजन, व्यायाम, प्राणायाम, शुद्ध विचार, स्वाध्याय तथा सत्संग बलवर्धक हैं। पाचनशक्ति जबतक ठीक है तभीतक मनुष्य रोगसे बचा रहता है और शुद्ध वायुमें नियमित व्यायाम, प्राणायाम तथा घूमनेसे मनुष्यकी सभी शक्तियें विकसित होती हैं, उत्साह बढता है, नवजीवन प्राप्त होता है और मनुष्य अपने अन्दर बल अनुभव करने लगता है। शरीरके सभी अवयव ठीक ठीक काम करते हो तभी मनुष्यके अन्दर वीर्य बननेतक ठीक क्रिया होती रहती है और मनुष्य नित्य नवजीवन प्राप्त करता हुआ बढता रहता है।

वीर्यक्षयसे जो प्रायः कामातुरताके कारण होता है मनुष्यकी पाचनशक्ति बिगड जाती है। मनुष्यमें बल स्थिर रहे इसके लिए पवित्र वायुमण्डल शुद्ध वातावरण नितांत आवश्यक है।

उत्तेजक राजसी भोजन अथवा शक्तिमन्द करनेवाला तामसी भोजन विवेकशील पुरुषको कभी भी नहीं ग्रहण करना चाहिए। आजकल तो चाय, काफी, अंडे, मांस, पान, सिग्रेट, शराब आदि सभी उत्तेजक पदार्थोंका रिवाज बढ रहा है और कामोत्तेजक दृश्य सिनिमामें तथा अश्लील गीत रेडियो और ग्रामोफोनके रिकार्डोंमें बहुत मिलते हैं। अश्लीलताके वातावरणमें बलवृद्धि बहुत

कठिन है, पतन सुगम है। प्रभावशाली सार्वजनिक आन्दोलन होना चाहिए ताकि लोगोंकी रुचि रचनात्मक कार्यक्रममें लगे और युवक-समाज तथा गृहस्थी अपनी स्थायी उन्नति कर सकें, पवित्र वातावरणमेंही बल-संचय हो सकता है तथा संचित बल स्थिर रह सकता है। बलवान् मनुष्यही कार्यकुशल हो सकता है।

संसारमें आकस्मिक घटनाएं कम होतीं हैं। मृत्यु साधारणतया क्षीण शरीर-मन-बुद्धिवाले मनुष्योंकोही जल्दी घेरती है। मनुष्य अपनी आयु शुद्धाचरण तथा बलको स्थिर रखनेसे बढा सकता है। देखा गया है कि बलवान् मनुष्य अधिक बल बढानेमेंही प्रसन्नता-लाभ करते हैं और दुर्बलेन्द्रियही अधिक कामुक होकर अपने आपको क्षीण करते हैं। युवक युवतियोंको चाहिये कि वे अपना खानपान, विहार, व्यवहार ठीक करे और ऐसे कृत्योंसे बचें जिनमें बलक्षय होता है।

(१३) शक्ति

शक्ति उस अनुभूतिका नाम है जिसके अन्दर होनेसे मनुष्य क्रियाशील होता है। शक्तिहीन दुर्बल मनुष्य सदा कामसे जी चुराता है, प्राणशक्ति, मनःशक्ति, बुद्धिकी शक्ति तथा आत्मशक्ति सभीके विकासके लिए स्वस्थ शरीर होना आवश्यक है। सारे धर्मसाधन स्वस्थ शरीर रहते हुएही हो सकते हैं, स्वस्थ शरीर, प्राण, मन और बुद्धियुक्त मनुष्यही सफल होता है, सफल मनुष्य शक्तिशाली कहा जाता है। सफलता और शक्ति एक दूसरेपर निर्भर है। अस्वस्थ होना पाप है, एक लांछन है। जो अस्वस्थ है वह दीन हीन है, वह कभी कृतकार्य नहीं हो सकता, वह तो पछताता रहता है और स्वस्थ बलवाले पुरुषोंके पौरुषको देखकर उनसे ईर्ष्या करता है। अस्वस्थ शरीरमें स्वस्थ मन नहीं होता है। मनुष्य शक्तिमान् हो, दृढ हो, स्थिर हो तभी उसका सम्मान होता है, जिसका सम्मान नहीं वह आत्मसम्मान भी खो बैठता है, यही हीनता है। हीनता और दीनताका साथ है। शक्तिशाली कभी दीन नहीं होता इसलिए वह हीन भी नहीं होता। वह उत्साहसम्पन्न रहता है, हीनता उसके निकट नहीं आ सकती। वह कभी निराश नहीं होता। शरीर हमें साधनाके लिए मिला है, स्वस्थ शरीरसेही धर्माचरण होता है। अस्वस्थ शरीर तो एक बोझ है, शरीर स्वस्थ हो तभी प्रत्येक अवयव, इन्द्रिय, मन, बुद्धिकी शक्तियें विकसित होती है और मनुष्य कार्य करनेमें समर्थ होता है। शक्तिहीन मनुष्य दयाका पात्र है, वह दूसरोंपर निर्भर रहता है, मनुष्य अदीन हो, कभी दीन न हो। जो दीन है वह हीन भी है और हीन मनुष्यही दीन होता है, हीनतासे मनुष्य पराधीनताकी बेडीमें जकडा रहता है और पराधीनतामें दीनता बढती है और मनुष्य हीनसे हीनतम होता है, ऐसी अवस्था सर्वथा त्याज्य है। पराधीनतामें शक्तिका विकास नहीं होने पाता। पराधीनता एक कलंक है जो शक्तिहीन लोगोंपर मढा जाता है। शक्तिशाली पुरुष पराधीनताको अपने ऊपर नहीं आने देते और किसी भूल से कुछ कालके लिए पराधीन हो भी जांय तो वे सदा स्वाधीनताके लिए उत्सुक रहते हैं और स्वाधीन होकरही रहना अपना स्वत्व जानते हैं। स्वाधीनताके भाव जब हृदयमें स्थान कर लेते हैं तो मनुष्य बल-संचय करता है, एकता बढाता है, आपसका वैमनस्य दूर करता है और परस्पर सौम्यभाव दृढ करके स्वाधीनता प्राप्त कर लेता है। ऐसा पुरुष जातिका उत्थान करता है और जाति उसका आदर करती है।

शक्तिहीन लोगोंके अन्दर जिम्मेदारीकी भावना क्षीण हो जाती है, उनके अन्दर उत्तरदायित्वका भाव लोप हो जाता है। शक्तिहीन केवल जीता है, वह उन्नत नहीं होता। यहांके सभी मनुष्य अपनी सारी शक्तियोंको स्थिर रखें, और बढावें तथा बढी हुई शक्तियोंका सदुपयोग करें तो यह भूमिही स्वर्ग हो जायगी और यहां निवास करना एक गौरव और आत्मसम्मानकी बात होगी। सबको शक्तिमान् तथा बलवान् होना चाहिये।

(१४) पराक्रम

पराक्रमका पर्यायवाची शब्द सामर्थ्य है। वीर्यवान्‌ही समर्थ होता है। वीर्यका तत्त्व जो ओज है उसके अन्दर होनेके कारणही पुरुष पराक्रमी होता है। पराक्रमी पुरुष अन्याय नहीं करेगा। पराक्रमी पुरुष सदा उदार होगा। पराक्रमी पुरुष विजेता होता है और वह विजय करे

संयमके कारण मिलती है। वीर्यवान् पुरुषही संयम कर सकता है। संयमसे वीर्यकी वृद्धि तथा शुद्धि होती है। शुद्ध वीर्य जब रक्तमें विद्यमान रहता है तो मनुष्यका प्रभाव बढता है, उसके अन्दर साहस, उत्साह तथा पराक्रम विकसित होते हैं। पराक्रमी पुरुष सदा प्रसन्न-वदन होता है, उसे अपनी शक्तिपर भरोसा होता है। स्वावलंबीही पराक्रमी होता है। पराक्रमी पुरुष कभी तुच्छ काम नहीं करता। पराक्रमी पुरुषके अन्दर महत्त्वाकांक्षा होती है और वह उसकी सफलताके लिए प्राणोंतककी बाजी लगा देता है। पराक्रमी पुरुष भयकी परवाह नहीं करता। भय तो कायरोंको लगता है। पराक्रमी पुरुष अभय होता है। पराक्रमी पुरुष विघ्नोंसे घबराता नहीं। विघ्न आनेपर अपनी शक्तिको बढाता है और विघ्नोंपर जय पाता है। पराक्रमी पुरुष कभी आपत्ति आनेपर पीछे नहीं हटता। पराक्रमी पुरुष सदा प्रण निभाता है और प्रतिज्ञा पालन करता है। पराक्रमी पुरुषको अपने देश तथा जातिके गौरवका, तथा अपने आत्मसम्मानका सदा ध्यान रहता है। पराक्रमी पुरुष कभी देशद्रोही अथवा जातिद्रोही नहीं होता। पराक्रमी बढकर कर्तव्य करना जानता है, कार्यको अधूरा छोडना नहीं जानता। पराक्रमीमें ओजकी विपुलता होती है। बिना पराक्रमके प्रभावशाली जीवन नहीं हो सकता। पराक्रमीके आगे यदि कांटोंकी बाढ भी आ जाय तो वह पहले उसे हटाएगा और अपनी कर्तव्यगति जारी रखेगा। पराक्रमीका जीवन उल्लास-भरा होता है, वह सब कार्य पूरी रुचिसे करता है और सफलतापर विश्वास रखता है। पराक्रममें सुख है, श्री है, शोभा है। पराक्रमी सर्व प्रिय होता है। कष्टके समय, देशपर विपत्तिके समय पराक्रमी पुरुषही आगे पग उठाते हैं और यश पाते हैं॥

(१५) अभय

मनुष्य अपनेसे अधिक बलवानसे भयभीत होता है अथवा जब मनुष्य कोई ऐसा कार्य कर बैठता है जो उसे न करना चाहिये था तब वह लज्जावश भयभीत रहता है कि इस कार्यके प्रकाशित होनेसे उसके यशको बट्टा न लगे। अत्याचारी मनुष्य भी अपने अत्याचारोंके कारण सदा भय-भीत रहता है। व्यसनी तथा व्यभिचारी तो भय-भीत रहतेही हैं। उन्हें उनके व्यसन तथा व्यभिचार अपने कुपरिणाम स्मरण कराते रहते हैं। नैतिक जीवनचर्या करनेवाला पुरुष क्यों भय माने? उसका मन पवित्र है, उसके अन्तःकरणमें कोई विकार नहीं, उसका जीवन उसके मन्तव्यके अनुकूल है और उसके मन्तव्य न्याय और नीतिके अनुकूल हैं। ऐसा पुरुष भी यदि त्रसित रहता हो तो समझो कि उसे अपने मन्तव्योंपर पूरी श्रद्धा नहीं, उसे अपने व्यवहारपर पूरा विश्वास नहीं। मनुष्यका काम अपने कर्तव्यको निश्चय करके उसे पूरी लगनसे करना है। जो काम आरंभ कर दिया उसे अंततक उत्साहपूर्वक करना है। भयका होना निश्चयकी कमी है, अपनेमें विश्वासकी कमी है।

संसारमें सभी भले पुरुषोंको स्वार्थी लोगोंने बुरा भला कहा है, उनके सत्य सरल भावोंपर भी विश्वास नहीं किया। उन्हें संदेहकी दृष्टिसे देखा है, किंतु सत्यनिष्ठ पुरुष भयभीत नहीं हुए। जिसका आचरण शुद्ध है और जिसका संकल्प दृढ है उसे भयका क्या काम? संसारने कब किस धर्म-परायण पुरुषको बुरा भला नहीं कहा? इतिहास साक्षी है कि महापुरुष अपने जीवनकालमें लो ठीक समझेतक नहीं गए। जिनका उन्होंने हित चाहा और किया उन्होंनेही उन्हें कष्ट दिये किंतु वे अपने कर्तव्यसे पीछे नहीं हटे। भगवान्पर अटूट श्रद्धाके कारण भक्तजनोंकी हंसी हुई, उनका निरादर हुआ, उन्हें कष्ट दिये गये, उन्हें विषतक दिया गया, पर वे ध्यान, संकल्पपर दृढ रहे, अपने कर्तव्यसे परे नहीं हटे, निर्भय होकर अपने विचार जनताके हितके लिये प्रकट करते रहे। मनुष्य क्यों भय माने जब कि उसका अन्तःकरण पवित्र हो और वह निष्कपट भावसे सर्वहितके लिए जैसा सत्य मानता हो वैसाही कहता और करता हो।

सत्यकी खोजमें तत्पर पुरुष सत्यकी परम शक्तिके भरोसेपरही अपने जाने हुए सत्यको प्रकट करनेमें आना-कानी नहीं करता। क्या वैज्ञानिकोंने कट्टर ईसाई पादरियों-के आगे अपने अन्तरात्माको दबने दिया? नहीं, वे सत्यके प्रकट करनेके लिये प्राणोंतककी आहुति हंसते हुए दे गए। क्या दयानंदको अपना जीवन केवल सत्यके मानने कहने तथा चरितार्थ करनेके लिए नहीं बलिदान करना पडा?

गुरु अर्जुन देवका बलिदान क्या कोई भूल सकता है? उनमें सत्यकाही तो बल था। सत्यका बल अजेय होता है। सत्यनिष्ठ भगवान्का भक्त सदा निर्भय रहता है। वह भय किससे करे? इसने तो अपने भगवान्कोही प्रसन्न करना सीखा है। यदि सत्य और धर्मके लिए प्राण जाते हैं तो उसे शरीरसे क्या? ऐसे सत्य-निष्ठ दृढ निश्चयवाले शक्तिमान् पुरुषही अभय होते हैं। भय उनके निकट नहीं आता। जब किसी आदर्शके लिए, किसी महान् उद्देश्यके लिए शरीरकी आहुति एक पुण्य कार्य हो जाता है, तो वहां भय कहां?

(१९) भगवान्में अटल विश्वास

जिसे भगवान्में पूर्ण श्रद्धा है वह कभी भी नहीं घबराता। जिसे भगवान्में परम निष्ठा है उसका चित्त सदा निश्चल रहता है। भगवान्में अटल विश्वास रखनेवाला मनुष्य सदा निश्चिंत होकर अपना कर्तव्य करता है और भगवान्की प्रसन्नता लाभ करता है। वह निष्काम सेवा करता है। उसे अपने प्यारे भगवान्को अर्पित कर देता है। अर्पणही उसकी चाव होती है। वास्तवमें पूर्णता अर्पणमेंही है।

भगवान्के अटल नियमोंको समझना तथा उनका पालन करनाही भगवान्की आज्ञाका पालन करना है। ऐसे पुरुषसे, जो भगवान्का आज्ञाकारी है, भगवान् सदा प्रसन्न रहते हैं। उसका व्यक्तित्व महान् हो जाता है। वह भागवत नियम पालन करता हुआ सदा स्वतंत्र रहता है। स्वतंत्रता और निश्शृंखलतामें बहुत भेद है। एकमें मुक्ति है, दूसरेमें बंधन है। एकमें सुख है, दूसरेमें दुख है। एकमें निश्चिंतता है, दूसरेमें सदाकी चिंता है। एकमें जीवनकी वृद्धि है, दूसरेमें जीवनका ह्रास है। नियम-पालन करनाही स्वाधीनता है। स्वाधीनता विना बलिदान के प्राप्त नहीं होती। स्वाधीनताके लिए निजी हितोंकी सर्वहितमें आहुति दी जाती है। स्वतंत्रता सेवा तथा अर्पण और अदम्य संकल्प और दृढ व्रतसेही प्राप्त होती है। जो नियंत्रणमें नहीं आना चाहता वह कभी आज्ञा देनेका अधिकारी नहीं बन सकता। जो अपने नियम स्वयं नहीं पालन कर सकता, वह परवश होकर पराधीन होकर पराए बनाए नियम निभाता है। हम अपने विधान आप बनाएं और उन्हें सहर्ष पालें तो हम भगवान्के निकट पहुंचेंगे क्योंकि भगवान् स्वयं अपने नियम निरंतर पालता है। सृष्टिके अटल नियम विना रोकटोकके निरंतर चल रहे हैं।

हमें भगवान्में अटल विश्वास है तो हमारा सामर्थ्य बढेगा, हमारी शक्ति बढेगी, हमारा वैभव बढेगा और हम स्वतंत्र होंगे क्योंकि हमारा भगवान् स्वतंत्र है और परम शक्तिमान् है। उसके निरंतर सहवासमें हम दीन कैसे रह सकते हैं? भगवान्में अटल विश्वास होनेसे मनुष्यमें पुरुषार्थकी भावना स्थिर रहती है और वह विना भयके आगे बढता रहता है।

भगवान्का साथही ऐसा साथ है जो कभी छूटता नहीं। भगवान्में विश्वास रखनेवाला पराधीन नहीं हो सकता, वह तो अजेय परमशक्तिसे संबंधित है वह पराजित कब हो सकता है? भगवान् अपने सखाकी सदा रक्षा करते हैं और वह सुरक्षित होकर अपना जीवन-रथ सदा आगे रखता है।

भगवान्में विश्वास करो, वह कभी साथ नहीं छोडते, सदाके साथी हैं, अब भी साथ हैं, सदा साथ रहेंगे। उनकी शक्तिसे शक्तिमान् होकर मनुष्य परम दृढ हो जाता है, वह ध्येयसे च्युत नहीं होता। वह निरंतर जीवन-स्रोतसे जीवन पाता है। उसे अनुभव है। कि जिस जीवन स्रोतसे उसका मेल है। वह अनंत है, वह अक्षय भंडार है, जीवन और प्रेमका, सत्य और आनंदका, निरंतर इस अक्षय स्रोतसे जीवन प्राप्त करनेपर वहां कभी कमी नहीं होती। भगवान् अपने प्यारे पुत्रोंको नित्य नवजीवन देकर प्रसन्न होते हैं और हम उनके पुत्र उनके दिये हुए जीवनको उन्हींके आदेशानुसार शुभ कर्मोंमें लगाते रहते हैं तो भगवान् गद्गद प्रसन्न होते हैं और मनष्यको भरपूर कर देते हैं। ऐसे भगवान्के कृपापात्रही महापुरुष होते हैं और संसारके मनुष्योंको अन्धकारसे निकाल कर ज्योतिकी ओर, अनृतसे हटाकर ऋतकी ओर तथा मृत्युपथसे हटाकर अमृतकी ओर ले जाते हैं।

भगवान्में अटल विश्वास करो, भगवान् सबके निकट हैं। वे हृदय विहारी हैं और साथही सर्व-व्यापक हैं। उन जैसा

निकट कोई भी नहीं, वेही परमपिता, परम बंधु, माता, सखा आदि हैं, वे जीवनदाता, पालनकर्ता तथा रक्षा करनेवाले हैं, उनपर विश्वास करो और अपना तथा सबका कल्याण करके आत्मतृप्त हो जाओ।

(१७) परस्पर सहायता

परस्परकी सहायता एक मानवी आवश्यकता है। जहां एक दूसरेकी सहायताकी आदत है वहां वैभव है, ऐश्वर्य है, क्योंकि वहां ऐक्य-बल है। एकताका बल शक्तिशाली होता है। उसमें जबतक आपसमें संदेह न हो, कभी दुर्बलता नहीं आती। एकने कपट किया, दूसरेने संदेह किया फिर एकताका पता नहीं पाता और सब वैभव और अभ्युदय क्षीण हो जाता है। परस्परकी सहायता समाज तथा राष्ट्रकी स्थिरता तथा उन्नतिका मूल सिद्धान्त है। संदेह और संशय सारे बिगाडकी जड हैं। संशयवृत्तिवाले दो मनुष्य भी आपसमें मिलकर कोई व्यवसाय अथवा व्यापार या व्यवहार नहीं कर सकते। परस्पर संदेह और संशयसे तो जीवनतक नीरस हो जाता है, ऐसे व्यक्ति जीते हुए भी मृतकसमान हैं। योग्यताका तात्पर्य भी शक्तियोंका संगठन है। जहां संगठित रूपमें परस्परके हितके लिए यत्न है वहांही व्यापार चलते हैं और राष्ट्र धनधान्यसंपन्न होता है। परस्परका मेल एक अद्भुत-शक्ति है। जहां ऐसा मेल होता है, वहां किसी बाहिरके व्यक्तिका उपद्रव करनेका साहस नहीं हो सकता। प्राचीन आर्यधर्म आपसके मेलकी शिक्षाके लिए विख्यात था। भारतमें जनता एक ग्राममें एक कुटुम्बके समान रहा करती थी। सुखदुःख क्या, प्रतिदिनकी जीवनचर्यामें भी बहुत एकता रहती थी। प्रायः सभी निर्णय ग्रामकीही पंचायत किया करती थी। लोगोंमें परस्पर सन्मान तथा आदरका भाव था। परस्परके परिवारके संबंधके अतिरिक्त ग्रामभरमें आपसमें बान्धवोंके संबंधके शब्दोंमें एक दूसरेको बुलाते थे। सभी परस्पर प्रेम-सूत्रमें पिरोये हुए थे, सभी स्नेहमें पगे थे। भारतीय सामूहिक शक्तिके लिए विख्यात थे। आज परस्परका वैमनस्य है। पैसेवालेके तो उसके धनके कारण दस साथी हैं भी, साधारण स्थितिके मनुष्यके लिए कठिनाई है। हां, जिस किसीमें सेवाका भाव है उसका काम नहीं अटकता।

आपसमें सहायता करनेका भाव कैसे पुनः उत्पन्न हो तथा स्थिर हो, यह प्रश्न उत्तर चाहता है। पराया राज फूटका कारण कहा जाता है और यह भी सत्य है कि आपसकी फूटहीके कारण पराधीनता है। सब एक स्थितिमें हैं, सभी परतंत्र हैं, सभीपर पराया अंकुश है, सभी पराधीन हैं, सभीको कष्ट है, फिर भी मतमतांतरोंके बखेडोंने एक लज्जितसी अवस्था उत्पन्न कर रखी है। अन्य देशोंमें भी विभिन्न मतोंके लोग रहते हैं। वहां भी अलग अलग व्यापार तथा व्यवसाय करते हैं, किन्तु देशवासी होनेके नाते सब एक हैं। यहांके वासी भी यदि यह शिक्षा ग्रहण कर लें तो निकट भविष्यमेंही देशमें नवजीवन और नवीन प्रगति दीख सकती है। यहांके वासी एक संस्कृति रखते हैं। यहांकी भाषा भी लग भग एकही है। मातृभूमि तो सबकी एक हैही। हमें परस्परकी एकता अवश्य संपादन करनी चाहिए, तभी सबका कल्याण है।

(१८) खेल

आज रोटी कपडेका प्रश्नही ऐसा विकट रूप धारण किए हुए है कि खेलकी ओर रुचि कैसे हो? वस्तुओंका मोल इतना बढा हुआ है, तिसपर भी साधारण आवश्यकतातककी वस्तुएं मिलनेकी अत्यंत कठिनाई है। छोटे बालकोंतकके मुखमंडल जो खिले फूल जैसे प्रसन्न होने चाहिये थे, आज कुमलाए हुए हैं। सारा देश एक घोर आपत्तिमेंसे गुजर रहा है। फिर भी जीवनमें कुछ उल्लास आवश्यक है जिससे जीवन भार रूप न हो जाय।

खेल दिनभर काममें लगे हुए मनुष्यके लिए आवश्यक है। चाहे बालक हो, चाहे युवा अथवा वृद्ध, चाहे स्त्री हो, चाहे पुरुष, सभीके लिए दिनभरकी थकान दूर करनेके लिए प्रति सायं मिलकर टोली बनाकर खेल खेलना स्वास्थ्य तथा मानसिक और बौद्धिक विकासके लिए आवश्यक है। जिन खेलोंमें एक नेताके अधीन होकर खेल खेला जाता है उनमें परस्पर हित साधनका भाव भी उन्नत होता है, तथा आज्ञापालन अथवा आज्ञामें रखने तथा आज्ञामें रहनेकी भावना भी स्थिर होती है। जो खेल नेताके अधीन खेले जाते हैं उनमें नियममें रहना भी सिखा जाता है। खेलमें परस्पर सहयोगकी शिक्षा मिलती है, तथा हारजीतमें प्रसन्नचित्त बने रहनेकी भी आदत

बनती है। अबसे पचास वर्ष पहलेतक भारतमें नाना प्रकारके देशी खेल खेले जाते थे जिनमें बाल, युवा, वृद्ध सभी सम्मिलित हुआ करते थे। कई खेल सबके सांझे थे। कई युवाही खेलते थे और कई युवा और वृद्ध इकट्ठे खेलते थे। पराये राज्यके कारण स्वाधीनताका अभाव, निरंतरकी पराधीनता और उसके कारण दीनता, धनका अभाव तथा रोटी, कपडेकी तंगीने खेलनेके भाव दूर कर दिये और केवल जीने या गुजारेका ख्यालही सर्वोपरि हो गया। सिवाय स्कूल कालिजोंके बहुत थोडी संख्याके छात्रोंमें जो हाकी, फुटवाल, वालीबाल, रगरटच, क्रिकेट अथवा टेनिस आदि अंग्रेजी खेल खेलते हैं, शेष लडकेतक भी किसी खेलमें सम्मिलित नहीं होते। स्कूल कालिजोंमें केवल थोडेसे गिनतीके टीमोंके लडकोंके सिवाय अन्य बहुसंख्याके लडकोंके लिए खेलोंका प्रबंधतक नहीं, यद्यपि फीस सबहीसे ली जाती है। सब जगह दिखावट है, केवल नमूनेके खेल हैं। जिससे आचरण बने और स्वास्थ्य उन्नत हो, ऐसी स्कूलों तथा कालिजोंके अधिकारियोंमें लग्न नहीं देखी गई। लडकियोंके स्कूल और कालिजोंमें इससे भी बुरा हाल है। सामूहिक तौरपर नमस्कार आसन आदिका प्रचार होना चाहिये जिससे सबकी उन्नति हो और समभावनाको प्रोत्साहन मिले।

खेलमें परस्पर प्रेम बढता है, खेलमें भेदभाव दूर होकर परस्परकी समताके भाव स्थिर और दृढ होते हैं, खेलमें मतमतांतरोंके भेद दूर होकर परस्पर हितके भाव बढते हैं। खेलमें एक नेताके नेतृत्वमें काम करनेकी सद्-भावना स्थिर होती है जो आगामी जीवनमें जनमत अनुसार नेताके नेतृत्वमें रहकर काम करनेकी भावना दृढ करती है। खेलमें पडी हुई आदतें जीवनभर सफ-लतामें सहायक होती हैं।

कहते है वाटरलूका युद्ध वास्तवमें ईटनमें खेलके मैदान-में जीता जा चुका था। लोगोंमें पुनः खेलनेकी रुचि उत्पन्न कराना नेताओंका काम होना चाहिये। प्रौढ तथा युवक युवतियें सभी खेल खेलें। उनमें जहां मनोरंजन होगा वहां संगठन शक्ति भी बढेगी। युवक और युव-तियोंके संघ और समितिएँ बननी चाहियें जिनमें इकट्ठे होकर बहुसंख्यामें व्यायाम तथा अन्य शरीर संचा-लनकी क्रियाएं तथा मातृवंदना आदिका प्रोग्राम हो और कुछ नैतिक शिक्षा भी। खेलोंमें जो हृदयकी पवित्रता, समता तथा विशालता बनेगी वह नागरिक जीवनमें उपयोगी होगी।

(१९) व्यापारकी शुद्धता

व्यापारमें दंभ, छल, कपट धोखा, चालाकी प्रायः देखी जाती हैं। जो अधिक चालाक है वहही चतुर व्यापारी है। व्यापारमें केवल लाभकी ओरही ध्यान देना तो स्वार्थ मात्र है। व्यापारसे तो खेती करनेवाले किसानसे लेकर, फैक्टरीके मालिकतक तथा एजंटसे लेकर दुकानदार तथा मोल लेकर वस्तुको बर्तनेवालेतक सभीका संबंध है। अन्न प्राकृतिक अवस्थामें उपजानेवालेसे लेकर भोजन बनानेवाले तथा खानेवालेतक तथा रुई उपजानेवालेसे लेकर कपडा बाननेवाले तथा पहननेवालेतक सभीका व्यापारसे संबंध है। व्यापार इतना विस्तृत काम है कि इसमें सभी प्रजा सम्मिलित हैं। ऐसे व्यापक तथा विस्तृत कार्यमें यदि अशुद्धता है, ऋतके स्थान अनृत है, ऋजुताके स्थान कपट है, सरलताके स्थान दंभ है तो समझो कि बुराईका कितना विस्तार हो रहा है। एक दूसरेपर विश्वास हो, तभी व्यापार चलता है। व्यापारमें सभी कमाएं किन्तु कमाएं पवित्रतासे तथा सत्यसे तो कितना परस्पर सुख हो, कैसी समृद्धि हो। यहां तो परस्पर संदेह है, एक दूसरेपर संशय करते हैं, कोई एक दूसरेपर विश्वास नहीं करता। कितनाही समय भाव ठहरानेमें व्यय होता है। क्याही अच्छा हो यदि प्रत्येक वस्तुका मूल्य निश्चित हो कितना समय बचे और कैसी सुविधा हो? व्यापारमें अनृत आजानेसे वस्तु मोल लेना एक रस्साकशी जैसा कार्य हो जाता है। परस्परका विश्वास और सद्व्यवहार व्यापारमें अत्यंत आवश्यक है।

व्यापारमें वस्तु बर्तनेवालेका हित भी होना चाहिये, केवल कमाईके ख्यालने तो अंधेर मचा रखा है। आपसका बर्ताव सच्चा हो तो सभी एक दूसरेपर विश्वास करें। दूधमें फिर पानी क्यों मिले, असली घीमें फैक्टरीका वनस्पती घी क्यों मिलाया जाय, सभी व्यापार सचाईपर हो और सभी सुखी हों। व्यापार देशकी जनताके हितके दृष्टिकोनसे होना चाहिये। इसमें कामही होगा और सर्व

हित भी। जो नियम किसी व्यक्तिको उन्नत करते हैं वेही व्यापारमें भी बर्ते जायँ तो किसीको कष्ट न हो, सभी सुखी हों और सब सन्तुष्ट हों।

(२०)व्यवहारकी पवित्रता

आपसका व्यवहार स्वार्थरहित हो तो अवश्य पवित्र होगा। जब व्यवहारमें निजी हितका भाव सर्वोपरि आ जाता है तो वहीं व्यवहारमें अपवित्रता आता है व्यवहार जबतक परिग्रहके भावसे रहित होंगे, तबतक आपसमें कभी वैमनस्य नहीं होगा। निजी हितही व्यवहारका मन्दापन है। परस्परके हितका भावही उस गन्देपनको दूर करनेका परम साधन है। स्वार्थ न हो तो आपसके मेलमें कभी मैल नहीं आएगा। छल और कपटका जनक स्वार्थही है। आपसके संबंध स्वार्थके कारणही बिगड़ते हैं और फिर ऐसे टूट जाते हैं कि एक दूसरेसे संपर्कतक जाता रहता है।

एक मित्र अथवा संबंधी दूसरेकी आवश्यकतापूर्तिके लिए उसे उधार देता है। उसका उस समयका कष्ट दूर हो जाता है और वह उस समय कृतज्ञ भी होता है पर जब वह उधार दिया हुआ धन लौटा या नहीं जाता और बारबार याद दिलानेकी विवशता आ जाती है तो आपसके संबंध बिगड़ जाते हैं। एक उधार लेनेवाले मनुष्यने उधार देनेवाले अपने मित्रको लिखा कि मरनेसे पहले रुपया लौटा दिया जायगा। रुपये दिए हुए बीस वर्ष बीत गए। इस बीच रोग भी हुए, मृत्यु आदिका कष्ट भी हुआ। उधार लेनेवाले महाशयने सहानुभूतितकके लिये आनेका कष्ट न उठाया और रुपये लौटानेमें सदाकीसी टालमटोलही दिखाई। आपसमें एक दूसरेकी सहायता करनाही कर्तव्य है किंतु कर्तव्य परस्पर निभानेकी वस्तु है, स्वार्थ पूर्तिके पश्चात् उदासीन हो जाना, रुपये लौटानेमें आनाकानी करना कोरी कृतघ्नता है जो सभीने महापाप कहा है; किंतु जब लोभ तथा स्वार्थ किसीकी बुद्धिको भ्रष्ट कर चुके हों तो वह धर्म और नीतिको जान बूझकर भूल जाया करता है।

धर्म और नीति जब परस्पर सहायक रहते हैं तो आपसके व्यवहार प्रेमके होते हैं क्योंकि उनका आवलंबन सत्य होता है। सत्य जबतक व्यवहारमें रहता है तबतक परस्पर मैत्री रहती है और सुखकी वृद्धि होती है। एक दूसरेकी भलाईही ध्येय होता है। जब स्वार्थ व्यवहारमें आ घुसा तो ईर्ष्या द्वेष तथा घृणा, आदर, प्रेम तथा उदारताका स्थान ले लेंगे और परिणाम दुख, शोक और चिंता होगा।

परस्परके व्यवहारमें शुद्धता परम आवश्यक है। जहां व्यवहार पवित्र हैं वहां संदेह नहीं होता। एक दूसरेकी उन्नतिमें चित्तमें सच्ची प्रसन्नता होती है। परस्परकी पवित्रता उपादेय है। जहां पवित्रता है वहां दिव्य गुण वास करते हैं। यही दिव्य जीवन है।

दिव्य जीवनमें दीर्घ आयु है और ऐश्वर्य तथा शोभा है। जीवनका क्रम, सत्य, यश, श्री और शोभा है। जहां इस क्रमसे जीवनचर्या होती है, वहां पराधीनता तथा दीनता नहीं ठहर सकतीं। वहांके मनुष्य स्वावलंबी तथा परस्पर एक दूसरेके सहायक होते हैं और सभी सुखी रहते है।

(२१) कार्यकुशलता

कार्यकुशल पुरुष किसी भी परिस्थितिमें अपना काम निकाल लेगा वह आत्मविश्वासी होता है उसे अपनेपर भरोसा होता है वह दूसरोंपर भी विश्वास करता है, उनमें सन्देह नहीं करता, वह मिलनसार होता है। उसे मनुष्योंकी परख होती है वह प्रत्येकसे उसके स्वभाव अनुसार बर्तता है। संसारमें सत्त्व, रज, तम तीन प्रकारके गुणके मनुष्य मिलते हैं, इन तीन गुणोंसे ऊपर तो कोई विरलाही होता है।

मनुष्य स्वयं सत्त्व गुणी हो तो अन्य दो गुणवाले मनुष्योंको तथा अपने जैसे सत्त्वगुण-प्रधान पुरुषको भी पहचान लेगा और उनसे यथोचित व्यवहार करके अपने कार्यमें सफल रहेगा। कार्यकुशल पुरुष सावधान होगा, कभी प्रमाद नहीं करेगा। सारा काम चेतनता और चतुराईसे करेगा और सबसे बनाए रखेगा। यदि मनुष्य किसीसे बिगाड़ ले तो न जाने कब कौन उसके कार्यकी सफलतामें विघ्न उपस्थित करे। कार्यकुशल पुरुष दक्ष होगा, सदा जागृत रहेगा, सब बातसे अपने आपको सूचित रखेगा। कार्यकुशल पुरुष स्वयं भी कार्य करेगा और अपने लोगोंसे काम लेनेमें भी सफल होगा। स्वयं

काम करनेसे और लोगोंसे काम लेना कठिन है। जिसे और लोगोंसे काम लेना पडे उसे मनुष्योंकी प्रकृति जांचनेका अभ्यास होना चाहिये। पुरुष नियमका उल्लंघन किये विना अपने कार्य्यकी पूर्तिके लिए भरसक यत्न करके सबको संतुष्ट रखे।

कार्यकुशल पुरुष स्वयं अपने आपको अपने कार्यक्षेत्र अथवा व्यापारका केन्द्र बनाता है और ऐसी चतुरतासे काम लेता है कि सभी उसे केन्द्र मानें, सभी उसका आदर करें। आदर चाहना और बात है, आदर पाना अलग बात है। कार्यकुशल पुरुष सभी स्थानोंमें आदर पाता है और सबको संतुष्ट रखके अपना कार्य करवा लेता है। यह एक ऐसा गुण है जोकि प्रत्येक अधिकारीको जानना आवश्यक है।

काम करनेवाले सच्चे सरल स्वभावके भी अनेकों हैं, पर जो सुगमतासे प्रसन्न रखकर दूसरोंसे काम करवा सकें ऐसे कम हैं। उन्नत देशमें हमें ऐसे कार्यकुशल पुरुषोंकी आवश्यकता होती है जो स्वयं जिम्मेदारीका काम निभा सकें। कहनेपर कार्य करनेवाला मनुष्य छोटे दरजेका है। ऐसे छोटे दरजेके लोगोंनेही अभी सामूहिक शक्ति लगाकर करनेवाले कामोंमें तत्परतासे कार्य न करके किन्तु शिथिलतासे काम करके कार्यफल खो दिये हैं। लगनसे, उल्लाससे, अंततक उत्साहसे काम करनेसेही कार्य-सिद्धि हो सकती है। जो लोग आरंभमें उत्तेजित होकर काम करते हैं और धीरे धीरे कार्यमें उदासीनता आने देते हैं, वे अवसर खोकर पछताया करते हैं।

कार्यकुशल पुरुषमें निरंतर धैर्य रहना आवश्यक है। कार्यकुशलता चिरकालतक निभकर एकनिष्ठासे कार्य करनेसेही आती है। लगकर काम करनेकी आदत डालनी चाहिये। मन लगाकर काम करनेसे चित्त प्रसन्न होता है।

(२२) प्रभावशाली जीवन

प्रभावशाली जीवन एक आकस्मिक घटना नहीं है। प्रभावशाली पुरुष बननेके लिए निम्न गुणोंकी आवश्यकता है—

१ अटल सचाई
२ निष्कपट भावसे सबसे व्यवहार
३ महत्त्वाकांक्षा
४ नियम पालन
५ तेजस्विता
६ धैर्य
७ दृढ संकल्प
८ अदम्य उत्साह
९ सहनशीलता
१० आत्मज्ञान
११ सदाचार
१२ आस्तिकभाव, (अर्थात् भगवान्‌में अटल विश्वास)
१३ आत्मसम्मान
१४ कार्यसाधनका ज्ञान
१५ आत्मविश्वास
१६ योग और क्षेम, तथा
१७ यश (अर्थात् आज्ञापालन, परस्पर प्रीति और उदारता)

केवल ऊपरकी टीपटाप अथवा कठोर बर्तावसे कभी कोई प्रभाव नहीं जमा सकता। जैसा उत्तम तथा स्थायी प्रभाव मधुरभाषीका होता है वैसा कटुभाषीका कभी नहीं हो सकता। व्यवहारचतुर मनुष्यकाही प्रभाव होता है। जो मनुष्य दूसरे लोगोंके गुणकर्मस्वभावको परख सकता है वह किसीसे न बिगाडकर यथातथ्य बर्ताव करके कार्य्यमें सफल होता है। कार्यकुशल पुरुषही प्रभावशाली होता है।

जिस मनुष्यमें कार्य्य संपादन करनेकी दक्षता नहीं, वह जगत्‌में असफल रहेगा। और असफल मनुष्योंनेही भाग्य आदिके ढकोसले रचे हैं। भगवान्‌पर अटल विश्वास रखनेवाले मनुष्यके लिए सभी दिन शुभ हैं। सारा समयही अच्छा है। उसे अपने पुरुषार्थपर भरोसा है और उसे भगवान्‌का सहारा है। जिसे भगवान्‌के निरंतर साथका अनुभव हो गया, वह भगवान्‌से अनुपम शक्ति पाता है। भगवान् सदा कृपाशील हैं, पर वे कर्त्तव्य-परायण, उद्यमी पुरुषपरही प्रसन्न होते हैं और हर प्रकारसे अत्यंत सहायता करते हैं।

सफल होकर पुरुषार्थी पुरुष अपनी सफलता भगवान्‌के चरणोंमें नम्रभावसे अर्पित कर देता है और निश्चिंत तथा

निर्भ्रान्त होकर पूर्ण दक्षतासे अन्य कार्य आरंभ कर देता है। सब योग्य साधन जुटाकर धैर्यसे, दृढ संकल्प, अदम्य उत्साह तथा सच्ची लगनसे उसे निरंतर नियत समयपर उत्तम विधिसे संपादन करता है और कृतकृत्य होता है और पुनः नम्रतापूर्ण हृदयसे वह सफलता भी भगवान्‌के चरणोंमें समर्पण कर देता है। इसी प्रकार सफलतापर सफलता प्राप्त करते हुए उसके स्वभावमेंही समर्पण ओत-प्रोत हो जाता है।

समर्पणमेंही जीवनकी पूर्तता है। समर्पणसे मनुष्यमें दिव्यशक्ति आती है, उसके विचार संकल्प तथा कार्य दिव्य हो जाते हैं। विघ्न आते हैं किंतु तेजस्वितासे, नम्रतासे तपोबलसे, बुद्धिकौशल तथा मनोबलसे, बाधाओंको हटाता हुआ एकके बाद दूसरी, दूसरीके बाद तीसरी, इस प्रकार निरंतर सफलता लाभ करता हुआ प्रसन्न होता है, पर कभी अहंकार नहीं करता। अभिमान और अहंकार जीवनकी प्रगतिके मार्गमें दो महान् शत्रु हैं। ज्योंज्यों मनुष्य सफल होता है त्यों त्यों उसके आगे आध्यात्मिक परीक्षाएं आती हैं। यदि वह नम्र रहकर तथा सावधान होकर चेतनाको जाग्रत रखकर विवेकसे काम लेता है, तो अभिमान तथा अहंकार बाधा नहीं डाल सकते, उसे सफलता प्राप्त होती है और स्वभाव-अनुसार वह सफलताको भगवान्‌के चरणोंमें समर्पित कर देता है क्योंकि वह जान गया है कि समर्पणमेंही जीवनकी पूर्णता है, कार्यक्षमताका रहस्य भी समर्पणमेंही छिपा है।

आस्तिक भावनाके स्थिर होनेपर पुरुषमें आत्मविश्वास और आत्मभावना जाग्रत होकर उसका परम कल्याण करती हैं। वही जीवन प्रभावशाली तथा विजयी होता है। आत्मविश्वास बडी कठिनतासे प्राप्त होता है पर अन्दर आ जानेपर चिरकालतक रहता है। आत्मविश्वास निरंतर रह सकता है यदि आत्माकी वाणीका सदा आदर किया जाय और आत्माके अनुकूल जीवन-चर्या बना ली जाय। मनुष्य आत्मासे न पूछकर और ना ही बुद्धिसे परामर्श लेकर केवल मनके अनुसार कार्य करके प्रायः पछताता है। मन चंचल है, चिरकालतक अभ्यासके बाद भी धोखा दे देता है। मनका निग्रह परम आवश्यक है वरना जीवन प्रभावशाली न रहेगा।

(२३) ऐश्वर्य-प्राप्ति

ऐश्वर्य सब चाहते हैं, किंतु ऐश्वर्य कैसे प्राप्त होता है और प्राप्त होकर ऐश्वर्य कैसे उपयोगी हो सकता है इस ओर ध्यान कम दिया जाता है।

पवित्रता, सहृदयता और प्रेम ये तीनों ऐश्वर्यप्राप्तिके साधन हैं।

भगवानमें अटल विश्वास पूर्ण श्रद्धा और भगवान्‌की व्यापकताका ज्ञान मनुष्यको पवित्र तथा शक्तिसंपन्न बना देता है। व्यापक भगवान् सब जगह सब समय हैं। वे सर्वज्ञ हैं और सर्वसमर्थ हैं, ऐसे प्रभु मेरे अंगसंग हैं, यह भाव मनुष्यके अन्दर उत्साह भर देता है। उत्साहके साथ सत्य व्यवहारसे मनुष्य यशस्वी होता है। यशस्वी मनुष्यको लक्ष्मी चाहती है वह श्रीसंपन्न होता है और उसकी शोभा बढती है। यही ऐश्वर्य है, जो परम ऐश्वर्यवान् प्रभु प्रसन्न होकर देते हैं।

प्रभु अविनाशी हैं, वे नश्वर ऐश्वर्य देकर प्रसन्न नहीं होते, वे तो अपने भक्तको अमर दिव्य ऐश्वर्यसे भरपूर करकेही प्रसन्न होते हैं। परमऐश्वर्यसंपन्न महान् प्रभुका उपासक, उस परमदेवका सखा, उस अनंत प्रेममय परम देवका साथी सदा दिव्य ऐश्वर्यसंपन्न होगा, प्रभुही परम ज्योति हैं वेही परम प्रकाश हैं, वेही परम तेज हैं, उनका उपासक दिव्य ज्योति, दिव्य प्रकाश और दिव्य तेजयुक्त होता है।

ऐश्वर्यवान् मनुष्य यदि उदार न हो, कृतज्ञ न हो तो ऐश्वर्य होते हुए भी वह कृपण होनेसे तरसके योग्य होता है। जिसे भगवान्‌ने सामर्थ्य दिया है उसे दूसरोंको समर्थ बनाना चाहिये। समर्थ रामदासजीने शिवाजीको योग्य बनाके ऐसाही किया था। श्री रामकृष्ण परमहंसने नरेन्द्रको प्रसन्नतापूर्वक विवेक, ज्ञान और दिव्य भावना देकर विवेकानंद बना दिया था। स्वामी दयानन्दकी अंत समयकी उदारता अनुपम है। उन्होंने अपने घातक जगन्नाथ-को अभयदान दिया था। स्वामी दयानंदके पास जो कोई भी बैठा उसे उन्होंने दिव्य ऐश्वर्य देकर कृतार्थ किया। अमृतसरके एक अभागे अनाथ लडकेको योगविद्या सिखा कर स्वामी लक्ष्मणानन्द बनानेका श्रेय श्री स्वामी दयानंदको

ही है। स्वामी दयानन्दकी मृत्युने गुरुदत्तको श्रद्धालु वेद-भक्त बना दिया। 'प्रभो! तेरी इच्छा पूर्ण हो,' ये शब्द साधारण मृत्यु-परायण मनुष्य नहीं कह सकता। इन शब्दोंने तथा मृत्युसमयके स्वामी दयानन्दके धैर्यने गुरुदत्तपर प्रभाव डाला। स्वामी दयानन्दको योगी अरविंदने समझा है और अन्य गिनतीके थोडेसे जनोंने उनकी महानताको कुछ समझा है। स्वामी दयानंद महान् था, सब प्रकार महान् था। वह ऐश्वर्यवान् था, तथा उदार था। वह अपना दिव्य ऐश्वर्य योग्य जनोंको निस्संकोच दिया करता था।

ऐश्वर्यके टिकनेके लिए ऋजुमार्गपरही चलते रहना चाहिये और अनुभवी ऐश्वर्यवान् सज्जनोंका सत्संग करते रहना चाहिये। ऐश्वर्य-प्राप्तिपर मदग्रस्त होना सबसे बडी भूल है। ऐश्वर्यवान्को नम्र होना चाहिये और सर्वहितमें ऐश्वर्यको लगाना चाहिये। जो अकेला ऐश्वर्यका भोग करता है, वह पापी है।

(२४) धनका सद्व्यय

धनका कमाना कठिन नहीं। धनका सद्व्यय एक कठिन समस्या है। जो मनुष्य धनका ठीक व्यय करना समझ लेता है, उसका निजी सामर्थ्य बढता है। उसकी विवेकशक्ति बढती है। वह आपत्ति आनेपर घबराता नहीं। ऐश्वर्यमें संकोच और कृपणता ठीक नहीं, पर यह स्मरण रहे कि धनका अपव्ययही निर्धनता और दरिद्रताका मूल कारण है।

सामाजिक संस्कारोंपर अधिक व्यय करना मूर्खता है। संस्कारके तत्वको समझना चाहिये और ऊपरके आडंबरसे बचकर संस्कारको उसके शुद्ध रूपमें देखनेसे धनका अपव्यय न हो सकेगा।

अपनी शरीररक्षा, अपने परिवारकी रक्षा, शिक्षा, सर्वांगविकास तथा देशका हित आदिपर धनका व्यय करना सद्व्यय है। केवल चटोरापन अथवा आंखोंकी लालसा पूरी करनेके लिए सिनिमा आदिपर धनका व्यय, अपव्यय है। भोजन शरीरको स्वस्थ रखनेके लिए है। शुद्ध घर शरीररक्षाके लिए है, परिवारजीवनकी पूर्णताके लिए है, इन सबपर विचारपूर्वक धनका व्यय करना सद्व्यय है। समताकी दृष्टि रखकर शरीर, मन, बुद्धि सबको साथ साथ उन्नतिके हेतु परिवारके सभी जनोंके लिए धनका व्यय करना, सद्व्यय है। धन कमानेवाला यदि केवल अपने ऊपर धनका व्यय करता है और परिवारके लोग तरसते रहते हैं, तो ऐसा करना धनका अपव्यय है।

धनके व्ययसे सामर्थ्यकी वृद्धि हो, शक्तिका विकास हो, आपसका प्रेम, एक दूसरेके हृदयमें निष्कपट भाव स्थिर हो, परस्पर सहायताकी रुचि हो तो वह धनका सद्व्यय है।

जिस धनके व्ययसे सबका चित्त प्रसन्न हो, घरमें एकता हो, कार्यशक्ति बढे वह सद्व्यय है, उससे ऐश्वर्य बढेगा और सर्वोन्नति होगी।

(२५) निजी सामर्थ्य

निजी सामर्थ्य कई सद्गुणोंके स्थिर होनेसे प्राप्त होता है। जिसमें सामर्थ्य होता है और दूसरा जो असमर्थ है उन दोनोंके स्वभावमें बहुत अन्तर है। सामर्थ्यवान् अभिमानी नहीं होता उसमें आत्मसम्मान होता है। इसीलिए वह दीनहीन असमर्थ लोगोंका संग नहीं चाहता। ऐसे लोग भाग्यपर निर्भर रहते हैं स्वयं उद्यम नहीं करते और जब उद्यमी समर्थ हो जाते हैं, तो ये लोग उनसे ईर्ष्या करते हैं, द्वेष करते हैं, द्रोहतक करने लग जाते हैं। पर समर्थके आगे इनकी दाल नहीं गलती, अपने मुंहकी खाते हैं, और अश्लील गाली देने लगते हैं अथवा अपवाद करते हैं। ऐसे लोग समाजके लिए कलंक होते हैं। जिस समाजमें क्षुद्रबुद्धि, दीर्घसूत्री, आलसी, प्रमादी लोग अधिक होंगे, वे सभी असमर्थ होनेसे दीन अवस्थामें होंगे और ऐसा समाज भी अवनत समाजही कहा जाएगा। इसके विपरीत जिस समाजमें सोच विचारकर शीघ्रतासे कार्य करनेवाले महत्वाकांक्षी, फुरतीले, संयमी, पुरुषार्थी और सावधान पुरुष होंगे वह समाज उन्नत कहलावेगा। समाजका उन्नत या अवनत होना उस समाजके व्यक्तियोंके निजी सामर्थ्यपर निर्भर है।

परावलंबी लोग सदा दुर्बल, दुश्चरित्र, दुःशील, निन्दक, लोलुप, स्वार्थी आदि लक्षणोंवाले होंगे। स्वावलंबी इसके विपरीत, बलवान् सुचरित्र, सुशील

विवेकी, त्यागी, सर्वहितैषी होंगे। परावलंबी असमर्थ होते हैं, और स्वावलंबी समर्थ होते हैं।

निजी सामर्थ्य वह भाव है जो मनुष्यको कठिनाईके समय सहायक होता है। समर्थ मनुष्य हताश नहीं होता। समर्थही योग्य होता है। उसके साथ अयोग्यकी नहीं पटती। अयोग्य तो योग्यकी निन्दा करकेही उसके प्रति अपना परिचय प्रकट करेगा और आपको दुखी तथा भाग्यहीन कहकर हरस्थानपर दो दो आंसू टपकाएगा।

जिस मनुष्यको यह पता लग जाता है कि हर काम ठीक समयपर ठीक रीतिसेही करना चाहिये और घरकी प्रत्येक वस्तु ठीक स्थानपर सजी हुई रहनी चाहिये, वह-ही समर्थ होता है और वहही सामर्थ्यका महत्व जानता है।

(२६) योग्यता

योग्यताकी प्राप्ति योग्य पुरुषद्वारा होती है। अयोग्यमें योग्यताका अभाव है। योग्य पुरुष अयोग्यको योग्य बना देगा, यदि अयोग्य मनुष्य अपनी अयोग्यताके लिये स्वयं अपने आपको अधिक जिम्मेदार समझे देखा गया है कि अयोग्य लोग अपनी परिस्थिति, वातावरण, परिवार, घर, गृहस्थ, मित्रमण्डल, मुहल्ला, नगर आदि सभीको जिम्मेदार ठहरायेंगे किन्तु आत्मपरीक्षण करके अपने दोष स्वयं नहीं देखेंगे। अयोग्य मनुष्यकी दृष्टि बाहिरको होती है, योग्य पुरुषकी दृष्टि अन्दर भी होती और बाहिर भी। अन्दर वह अपने आपको देखता है और बाहिर वह जगत्को देखता है। नियम यह है कि जबतक कोई अयोग्य मनुष्य अपनी अयोग्यताके लिए विशेष जिम्मेदारी अपनी निजी नहीं समझ लेता, वह योग्य नहीं हो सकेगा।

अयोग्य मनुष्यको योग्य पुरुषकी संगति करनी पडेगी, यदि उसकी इच्छा योग्य बननेकी हो चुकी है। उसे कुछ छोडना पडेगा और कुछ ग्रहण करना पडेगा। अनुभवसे देखा है कि अयोग्य लोगोंमें व्यसन तथा व्यभिचार बहुत होते हैं, वे प्रायः आलसी, झूठे, चोर, लालची और कपटी होते हैं। यह अपनी सम्पत्ति उन्हें फेंकनीही पडेगी। भगवान्के इस असीम पारावारमें एक विचित्र अनुपम गुण है। इसमें आप संकल्प करके अपने व्यसन फेंक दीजिए, यह भगवान्का वायुमण्डल उन्हें ले लेगा और आपको शुद्ध कर देगा। देखा गया है कि जिस प्रकार अपान वायुकी गंदगी फिर भगवान्की कृपासे शुद्ध जीवनप्रद प्राणवायुमें बदल जाती है इसी प्रकार दृढ निश्चयपूर्वक सच्चे पश्चात्तापसे भगवान्को साक्षी मानकर जब मनुष्य व्यसनोंको त्याग देता है तो भगवान् उसे अद्भुत शक्ति देकर उन व्यसनोंसे लडनेकी और इनपर विजय पानेकी क्षमता देते हैं। आत्मविजयही सच्ची योग्यता है, यही विजयी जीवन है।

जिसने दुराचार त्यागकर सदाचार ग्रहण किया, वह योग्य हो गया; वह अयोग्य न रहा, वह सदाचारी हो गया, भला हो गया, उसका जीवन सुधर गया, वह धन्य हो गया।

(२७) सफलता

संसार कर्मक्षेत्र है, यहां कुछ न कुछ तो सभी करते हैं। जो किया जाता है वह कर्म कहलाता है। कुछ कर्म अपने लिएही किये जाते हैं, जैसे नहाना, धोना, खाना, पीना कपडे पहनना, रहनसहन आदि। कुछ दुष्कर्म होते हैं जैसे झूठ, हिंसा, चोरी, लम्पटपन, लालसा, लोलुपता आदि। कई सुकर्म होते हैं जैसे अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह। निजके कर्मोंमेंही शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय, ईश्वरप्रणिधान आदि आते हैं। वास्तवमें तो कोई ऐसा कर्म नहीं जिसका प्रभाव दूसरोंपर न पडता हो। यदि कोई मनुष्य अपवित्र रहता है और वह अपवित्रताके कारण रोगी हो जाता है तो उसकी रोगी होनेकी अवस्थासे उसके साथियोंको अवश्य कष्ट होगाही, पर चोरी, झूट आदि तो निश्चित रूपसे दूसरे मनुष्योंके संपर्कके विना होही नहीं सकते।

कर्म ठीक ठीक हों, ठीक रीतिसे हों, ठीक समयपर हों तो परिणाम अवश्य हितकर होता है; और करनेवालेको यश मिलता है। जीवनकी सफलता उसके निर्दोष होनेमें है। जिन कर्मोंसे दूसरोंकी हानि होती है उनसे यदि गहरे तौरपर आध्यात्मिक भावसे देखा जाय तो अपनी हानि पहले होती है। हानिकर कर्मही दोष कहलाते हैं, वे त्याज्य हैं।

सफल मनोरथ होनेके लिए कर्तव्योंका पालन करना चाहिए, कर्तव्य-पालनसे अधिकार अवश्य मिलते हैं।

कुछ कर्तव्य नीचे लिखे जाते हैं इनके अनुष्ठानसे अवश्य सफलता प्राप्त होगी—

१ समयका सदुपयोग
२ विवेक
३ उद्देश्यका निश्चय
४ आदर्श
५ परिस्थितिका ज्ञान
६ आत्मविश्वास
७ स्थिरता और दृढता
८ कर्मशीलता
९ सात्विकता और
१० प्रसन्नता

समयका सदुपयोग अत्यंत आवश्यक है। समय किसीकी प्रतीक्षा नहीं करता। काल अपनी चाल धीमी नहीं करेगा। यदि सुस्ती की, तो समय गया, यदि आलस्य किया तो समय गया, यदि भूल गये तो समय गया; यदि सो गए उस समय, जिस समय काम करना था, तो समय गया, समयही मनुष्यकी सबसे मूल्यवान् सम्पत्ति है, इसे खोनेमें बहुत बडी हानि है, सब कार्य समयपर करने चाहिये, इसमें जीवनकी कुशलता है। विवेकसे परखकर महापुरुषोंके जीवनसे जांच कर, उद्देश्यका निश्चय करो और किसी महापुरुषके जीवनका आदर्श जीवनके विकासके लिए अपने सामने रखो। जैसे ब्रह्मचर्यके लिए हनुमानका, भीष्मपितामहका, स्वामी दयानंदका, निद्रापर संयमके लिए भरत, अर्जुन, नेपोलियन तथा दयानंदका, समयके सदुपयोगके लिए दयानंदका, महात्मा गांधीका, त्याग भावनाके लिए भरत, महात्मा बुद्ध, महात्मा ईसा, तथा दयानंदका, मर्यादाके लिए श्रीरामचन्द्रका तथा दयानंदका,प्रणपालनके लिए श्रीरामचन्द्रका, नीतिकी सफलताके लिए श्रीकृष्णचन्द्र तथा चाणक्यका, आत्मबलिदानके लिए गुरु अर्जुनदेवका, शौर्यके लिए राणा प्रतापका, श्री शिवाजीका, अर्पणभावनाके लिए पं. जवाहरलालका, दृढताके लिए महात्मा गांधीका आदर्श आप सामने रख सकते हैं। उदाहरणमात्रके लिए कुछ एक नाम लिखे हैं। स्त्री चरित्रोंमें सीता, रुक्मिणी, अनसूया, कौशल्या ' सुमित्रा, दमयंती, मन्दोदरी, शकुंतला आदिके जीवन आदर्श रूप हैं; तथा बालकोंमें सर्वमान्य प्रह्लाद तथा भरत, जिसके नामसे हमारा अखंड देश भारतवर्ष कहाता है। उत्तमोत्तम जीवन चरित्र तथा भले पुरुषोंका संग ऐसे अनुभव देंगे कि मनुष्य सफलताका रहस्य जान सकेगा।

(२८) देशहित

जिसके जीवनसे देशका हित होता है, वह धन्य है। जो देशद्रोही है वह तो निन्दनीय है, उसके लिए देशमें कोई स्थान नहीं। मनुष्योंके कर्मही देशका हित अथवा अहित करते हैं। यदि सामूहिक मनुष्य संयमी पुरुषार्थी तथा आत्मविश्वासी होकर लग्नसे देशकी उन्नतिके निमित्त व्यवसाय, शिक्षा, स्वास्थ्य, ऐश्वर्यवृद्धि, नैतिक जीवनचर्या, अन्य देशोंसे संबंध, भूमिकी उपजाऊ शक्ति, भूमिके अन्दरके पदार्थोंका अन्वेषण, वैज्ञानिक आविष्कार, देशकी संस्कृति, देशकी एकभाषा आदि अनेक विषयोंपर विचार करके सर्वोन्नतिकी साधना करते हैं तो समाज उन्नत होता है और उन्नत समाज, उन्नत राष्ट्र वा उन्नत देश एकही बात है। हमें जाति-धर्मकी अवहेलना नहीं करनी चाहिये। हमारे देशमें कई शताब्दियोंसे व्यक्तिगत उन्नतिपर अधिक बल दिया गया है और समष्टिरूपसे सारी जातिकी उन्नतिकी ओर ध्यान नहीं दिया गया। शाश्वत जाति, धर्म तथा कुलमर्यादाएं और देशकी संस्कृति तथा सामूहिक रूपसे जनताकी संगठित प्रगति और देशप्रेमके नाते सभीका बंधुत्व, ये राष्ट्र-उत्थानके लिए परम आवश्यक हैं।

देशमें जीवन हो, ज्योति हो, प्रकाश हो, सबके जीवन उज्ज्वल हों, आपसमें विशुद्ध प्रेम हो, सब एक दूसरेका हित करनेमें तत्पर हों, तो सब कार्य सर्वहितके होंगे, ये सब कार्य देशहित समझे जायेंगे और इनसे देश और जाति अवश्य उन्नत होगी। पराधीनता एक लांछन है। पराधीनताको व्यक्तिगत दृष्टिकोण सबसे अधिक प्रोत्साहन देता है। हमारा दृष्टिकोण बदलना चाहिये। न तो व्यक्तिके ऊपर समाजका असह्य दबावही हो और न व्यक्तिके अन्दर उच्छृंखलता हो और उसकी मनमानी जीवनचर्या हो। जातिमर्यादाके भंग करनेका किसीको साहस न हो, जातीय संस्कृति सुरक्षित हो और

व्यक्ति अपनी निजी उन्नति तथा संपत्तिमें स्वतंत्र हो तो व्यक्ति तथा समाज सभी उन्नत होंगे। व्यक्ति समाजमें हर प्रकारके उन्नत होनेसे अवसर पाए और समाजका एक योग्य अंग होकर रहे, इसीमें सर्वकल्याण है।

जो लोग स्वस्थ हैं और अन्य लोगोंमें स्वास्थ्यका आदर्श सामने रख रहे हैं वे देशहितैषी हैं। जिन्हें देशमें बलवान् युवक और बलवती युवतियाँ, जो एकनिष्ठासे कार्यमें तत्पर रह सकें, ऐसे सुशिक्षित और सुसंस्कृत जन बनानेकी लग्न है, वे देशहितैषी हैं; और उनका यत्न देशहित है। जो स्वयं पवित्र हैं और आसपास पवित्र भाव, पवित्र विचार तथा पवित्र व्यवहार फैलानेमें यत्नशील हैं वे देशहितैषी हैं। जो अपने आपको अपने पुरुषार्थसे उन्नत कर रहे हैं और स्वयं आदर्श बनकर अन्य लोगोंमें सद्भाव तथा सत्कर्म फैला रहे हैं, वे देशहित कर रहे हैं, ये सब धन्य हैं।

आजकल कई कारणोंसे देशहितकी ओर ध्यान कम दिया जा रहा है। देशप्रेम, मातृभूमिके प्रति श्रद्धांजलि, मातृवंदना आदिकी चर्चा तो कुछ है, पर देशहित कैसे किया जाय इस आवश्यक कार्यकी ओर ध्यान कम है। देशहितका कार्य तो एक निर्माण कला है। इस कलाद्वारा युवक-युवतियोंमें स्वावलंबन, आत्मविश्वास, परस्पर प्रेम, सद्व्यवहार, निष्कपट बर्ताव, शुद्ध जीवनचर्या आदिका प्रसार करना होगा, यह तो कठिन कार्य है। जो गुण आप युवक-युवतियोंमें प्रवेश कराना चाहते हैं, उसका विपुल भंडार अपनेमें एकत्र करना होगा, तभी तो वह गुण अन्य लोगोंमें प्रवेश करेगा। अग्निसे अग्नि प्रदीप्त होती है, केवल बातोंसे क्या कभी किसीने आग जलाई? एक दीपकसे दीपावलिकी रातको लोग अनेक दीपक जला लेते हैं किंतु अन्य दीपकोंमें तेल और बत्तियें भी तो होती हैं।

देशहितकी शिक्षाके प्रसारके लिए सहृदय, भावुक, अर्पणका चाव रखनेवाले वीर, संयमी, धैर्यवान्, दृढ प्रतिज्ञयुवक और युवतियाँ लेनी होंगी। प्रारंभिक गुण तो परिवारोंसेंही आने चाहियें। परिवारोंकी सुशिक्षाके लिए प्रौढ स्त्रियों तथा पुरुषोंकी ओर भी ध्यान देना होगा।

चिरकालकी पराधीनताने लोगोंमेंसे आत्म-सम्मान तथा आत्मविश्वास क्षीण कर दिये हैं। देशके भूतकालका गौरव तथा देशका उज्ज्वलतर भविष्य सामने जतलाकर लोगोंमें सदाचार और पवित्र व्यवहार, निष्कपटता आदिका प्रसार करना होगा, तब लोग स्वार्थ और परस्परके व्यर्थ कलह छोडकर सामूहिक अथवा सामाजिक जीवनकी ओर आकर्षित होंगे। जातिहित तथा देशहित परस्परके स्वार्थके नियंत्रणपर अवलंबित है। यह नियंत्रण निजी हो, दबावसे न हो, तो सर्वोन्नतिमें परमसहायक होगा, यहही परम-देशहित है। निजी हितोंको सर्वहितमें आहुत करना सिखाना होगा। निजी हित, स्वार्थकाही रूपान्तर है। स्वार्थ मर्यादाके अन्दर रहे और परस्परकी सद्भावना जाग्रत रहे और सभी इसी भावसे हों, तो देश सर्वांग उन्नत होगा।

(२९) विश्वप्रेम

ईशप्रेम और विश्वप्रेममें अभेद है, दोनों एकही हैं। भगवान्का विश्वदर्शन, विश्वमेंही होता है। प्रत्येक प्राणीमें, क्या चर और क्या अचर, सभीमें भगवान् व्याप्त हैं। इस प्रकार भगवान्को साक्षात् करके जो भगवान्के विश्वके साथ प्रेम करता है वह भगवान्सेही प्रेम करता है। सारा जगत्, जगत्के सभी पदार्थ, इस जगतीके अन्दर अनन्त जगत् और अपने जगत्के सभी स्थावर जंगम पदार्थ, सभी जीवन, अनन्त प्राणी तथा मनुष्यवर्ग, सभीमें भगवान् व्याप्त है, कोई स्थान, कोई वस्तु ऐसी नहीं, जिसमें भगवान् न हो। भगवान् प्रत्येक मनुष्यके हृदयमें है और साथही सारी जगतीमें व्यापक है, यह परम सत्य है। इस सत्यको जिसने जाना है, जिसने चरितार्थ किया है, उसने विश्वप्रेमका रहस्य जान लिया है।

विश्वप्रेमही मानवका ध्येय है। परिवारका प्रेम, आस-पासवालोंसे प्रेम, प्रांतसे प्रेम, देशसे प्रेम, ये सब मानव-प्रेमकी सीढियाँ हैं। मनुष्य-जीवनका उद्देश्य मानवताके एक सूत्रका दर्शन करना है। मानवतासेही मनुष्य है। मनुष्य पहिले मनुष्य हो, अपना पशुपन सीमित करे, तथा साधनद्वारा दिव्य गुण धारण करे और दिव्य गुणोंका

जीवनचर्यासे प्रसार करे तो सारी दिव्य शक्तियाँ मनुष्य-रूपी दिव्यजनकी सहचरी होंगी, मनुष्य देवता बन चुका होगा, उससे कोई भी कार्य ऐसा न हो सकेगा जिसमें उसके यशको, उसके मनुष्यत्वको बट्टा लगे। उसका यश महान् होगा, उसकी कीर्ति फैलेगी, वह वर्चस्वी होगा, तेजस्वी होगा, ओजस्वी होगा, उसका मान होगा, क्योंकि वह दिव्य आत्मा होगा; और वह अन्य पुरुषोंका, जो मानवरूपमें दिव्यता लानेमें यत्नशील होंगे, उन सबका मान करेगा, चाहे उनका विधान उससे पृथक्‌ही क्यों न हो। मनुष्यमें भिन्नतामें एकताका अनुभव होगा। शरीर चाहे अलग अलग हों, हृदय एक होंगे। मनुष्यमें आत्म-सम्मान होगा, और आत्मसम्मानवाला मनुष्य किसीका निरादर न करेगा, वह सबका योग्यतानुसार मान करेगा।

ऐसी अवस्था लाने निरंतर सात्त्विक गुणमें रहना होगा, पुनः इस अवस्थासे भी ऊंचे उठकर भागवत् गुणोंको अपने अन्दर धारण करके कृतकृत्य होकर उन गुणोंका प्रसार करते हुए, संसारमें स्वर्गका आनन्द आ सके, ऐसी सुन्दर भावनासे प्रेरित होकर जगत्‌के कल्याणके निमित्त यत्नशील होना होगा।

जीवन एक संगीत है, प्राणभरी इस विश्वमहीमें, हे मनुष्य! तू भयभीत मत हो, यहां तेरा रक्षक निवास करता है, वह तेरा अपना प्रियतम है, उसका प्रेमका हाथ तुझपर है, तू भयभीत मत हो। संसारके त्रास प्रियतमके साथमें तुझपर अपना प्रभाव न डाल सकेंगे। हे मनुष्य! तू जीवनसे जीवन विकसित कर और प्रेमके गीत गा, जीवन एक संगीत है। हे मनुष्य! तू आनन्दमग्न हो, प्रभुआज्ञामें रत होकर प्रभुके नियम-पालनमें यत्नशील होकर अपनी जीवनचर्या सोच समझकर निश्चित कर ले, उद्देश्य बना ले, आदर्श सामने रख, नित्य निरंतर निष्काम जनसेवामें जीवन अर्पित कर दे। याद रख, जीवन एक संगीत है, जीवन निश्चय एक संगीत है। इस संगीतरूपी जीवन-को महाविराट्‌की हृत्तंत्रीसे निकले तारोंकी ध्वनिके साथ मिला दे। जीवन एक संगीत है, यह निश्चय रख। इसे लीलामयकी लीलाके स्वरोंसे मिलाकर गा। जीवन एक संगीत है, यह निश्चय रख।

आनन्दकन्द भगवान् श्री कृष्णचन्द्र

(लेखकः— श्री. पं. रामचन्द्रजी, अंबाला सिटी, पंजाब.)

यदि संसारभरमें कोई ऐसा विषय है जिसके समझने समझानेमें मनुष्य तो क्या देवता भी असमर्थ हैं, तो वह भगवान् कृष्णका सारगर्भित जीवन चरित्र है। महर्षि वेद-व्यास निस्सन्देह एक अतीव विशाल बुद्धि और गंभीर धर्म-मर्मज्ञता रखते थे जिन्होंने श्रीमद्भागवतमें तथा महाभारत और तदन्तर्गत भगवद्गीताद्वारा इस महान् दुर्गम विषयपर ऐसा सुन्दर प्रकाश डाला है कि उसको जितनी बार पढो, उतनीही बार नये रहस्य और नूतन सौन्दर्यका अनुभव होता है।

परन्तु प्रश्न होता है कि जब यह विषय इतना कठिन तथा पेचीदा है तो तुम्हारा इसपर लेखनी चलाना बच्चोंका सा साहस नहीं तो और क्या है? यह कथन सोलह आने सच है। परन्तु यह भी तो निश्चय है कि किसी गंभीर तथा पवित्र विषयमें विचार करनेसे भक्तिभावकी वृद्धि तथा आत्मज्ञानकी उन्नति होती है। अतः यह सेवक इस नियमका अनुसरण करते हुए आज यहां कुछ अपने विचार प्रकट करनेके वास्ते उद्यत होता है। यह विचार-प्राकट्य दूसरोंको समझानेके लिये नहीं अपितु अपने समझनेके लिये, अपने आनन्दके लियेही है।

जो भाग्य-शूर पुरुष श्रद्धाद्वारा भगवान् कृष्णको पूर्ण-कला अवतार समझते हैं, उनको तो भगवान्‌की सारी लीलाएं सारगर्भित, शिक्षाप्रद, भक्तिकुसुमोत्पादक, आनन्द-वर्धक तथा भगवत्सामीप्यमें ले जानेवाली हैं। उनके लिये तो हमारा कुछ कहनाही नहीं बनता, हां जिन पुरुषोंके ज्ञानमय कोषका शिर अर्थात् श्रद्धाका उद्गम अभी नहीं हुआ है उनकी सन्तुष्टिके लिये भी यदि हमारा कथन कुछ सहायक हो तो हम अपनेको बडे अनुग्रहीत समझेंगे।

भगवान् कृष्णकी लीलाओंका संक्षिप्त वृत्त आपके सम्मुख रखनेसे पहिले यह आवश्यक मालूम होता है कि हम इन भोले भाइयोंकी आंखोंके आगेसे 'असम्भववाद' की ऐनकको उतार दें, जिसके होनेसे वह लीलाओंके रहस्यको नहीं समझ सकते।

भगवान् कृष्णचन्द्र आनन्दकन्दकी लीलाएं भी सम्भव हो सकती हैं। भला जो यह संभव न होतीं तो भागवतादि ग्रन्थोंके कर्ता जो एक तरफ दार्शनिक विद्याके इतने उच्च तथा गम्भीर विषयोंपर विचार करते थे, वे यह न सोचते कि इन असम्भव मनगढन्त बातोंको लिखनेसे हमारी हंसी होगी तथा हमारे कथनपर लोगोंको विश्वास न होगा? क्या वह ऐसे निर्बुद्धि थे जो इतना भी न सोचते? वास्तवमें यह सब घटनायें जहां अपने भीतर अटल सचाइयां छिपाए हुए हैं वहां ऐतिहासिक रूपसे सत्य भी थीं। हां! कहीं कहीं अलंकार रूपसे भी किसी न किसी आत्मिक नियमको दर्शानेके वास्ते यह घटनायें हुई हैं। बस यदि कोई श्रद्धासे तथा उपरोक्त नियमोंको ध्यानमें रखकर भगवान् कृष्णकी लीलाओंको पढे या विचारे तो उनको उसके भीतर अनमोल मोती मिलेंगे।

अब हम अपने असली प्रस्तुत विषयकी तरफ आते हैं। संसारमें जितने भी अवतार या महान् व्यक्तियां समय समयपर और देश देशमें प्रादुर्भूत हुई हैं उन सबमें भगवान् कृष्णका जीवन कई प्रकारकी विशेषताएं रखता है। इनका जीवन सभी प्रकारके मनुष्योंके लिये आदर्श जीवन है। इससे सब वर्ण, सब आश्रम, सब स्त्री या पुरुष, सभी युवक वृद्ध तथा बच्चे, राजा, प्रजा, अर्थात् सभी लोग शिक्षा ले सकते हैं। इसके अलावा भक्ति, प्रेमरसका माधुर्य तो उनकी बात बातसे इतना टपकता है जो और अन्य महात्माओंके जीवनमें नहीं दीखता। इनके जीवन-रूपी मुरलीकी ध्वनिमें इतना आकर्षण है कि वह न केवल मनुष्योंको, अपितु पशु पक्षियोंको भी अपनी ओर आकर्षित किये बिना नहीं रहता। बाल, वृद्ध, गृहस्थी, विरक्त सभी

उनकी मुरली मनोहरीको सुनकर रोमांचित हुए बिना नहीं रह सकते।

यदि पाठकवृन्द भगवान् कृष्णके वास्तविक जीवन-चरित्र तथा लीलाओंको जानना चाहें तो उनको श्रीमद्-भागवतके दशम स्कन्धको ध्यानपूर्वक पढना चाहिये। यहां तो हम केवल दिग्दर्शनन्यायसे सूक्ष्मरूपमेंही कुछ कहेंगे।

सब ईश्वरवादियोंका यह विश्वास है कि इस संसारमें जो भी कोई घटना होती है उसके हेतु और प्रयोजन अवश्य होते हैं, चाहे वह साधारण पुरुषको दृष्टिगोचर न होते हों। भगवान् कृष्णकी लीलाएं भी इस नियमसे बाहर नहीं हैं। वह तो स्वयंही भगवद्गीतामें अपने मुखारविन्दसे कहते हैं कि—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्म-संस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे॥

अब यदि कोई भाई भगवान् कृष्णको अवतार न भी माने, तो उनको वह योगेश्वर तो मानतेही हैं और योगेश्वरके शब्द भी विश्वसनीयही होते हैं। अतः भगवान्के कथनानुसार उनके अवतरणका हेतु धर्मकी ग्लानि (गिरावट) तथा प्रयोजन धर्मका पुनः संस्थापन करना, भक्तोंको भक्ति-प्रतिकूल वायुमण्डलसे बचाना और दुष्कृति अर्थात् उन पुरुषों या शक्तियों (Forces) का नाश करना जो संसारके विकासके रास्तेमें बाधा डालते थे। अब हम उनके जीवनचरित्रपर काकावलोकन न्यायसे नजर डालकर देखते हैं कि इस कथनमें कितनी सचाई है।

उनकी सारी लीलाओंका यदि हम सार निकालें तो उसके निम्नलिखित विभाग होंगे।

१- भक्ति और प्रेमभावका विविध लीलाओंद्वारा यथार्थ तथा प्रचुर प्रचार।

२- संसारके विकास-विरोधी शक्तियोंका विनाश।

३- संसारके ऐतिहासिक नाट्यपटपर आदर्श राजकीय प्रबन्ध कर्तोकी यथार्थ तस्वीर खेंचकर दिखाना।

४- आदर्श मित्र या सखाके रूपमें अपनेको प्रकट करना।

५-मनुष्योंके अन्तरीय भावोंकी विचित्र रूपसे परीक्षा या आजमायश करना ताकि उसके अन्दर सकल नीचता निकल जावे।

६-संसारकी सब विषमताओं तथा उनसे होनेवाले अनेक दुःखों और कष्टोंका एक-मात्र इलाज अर्थात् समताका उपदेश-विश्वरूपदर्शन।

७-भगवान्का जगद्गुरुके रूपमें प्राकट्य। अर्थात् श्रीमद्भगवद्गीताके कलेवरमें ऐसा उपदेश देना और इस प्रकार देना जो संसारके सभी धर्मों, सभी जातियों, सभी संप्रदायों, सभी मत मतान्तरों, सभी देशों, सभी वेषों, सभी समयों, सभी अवस्थाओंके नर, नारियों, बच्चों और बूढोंके लिये सदाके लिये उपयोगी रहेगा; या यह कहिये कि सभी उपदेशों या शिक्षाओंका ऐसा समन्वय निकालना जो न भूतो न भविष्यति।

भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्दकी जीवनलीला-नाटकके यह सप्त स्कन्ध किये गये हैं। इनमेंसे प्रत्येक स्कन्धका इतना विस्तार तथा महत्त्व है कि यदि कोई साधक आयु भर भी इसका पठन पाठन या आन्दोलन करे तो भी उसका पारावार नहीं पा सकता। परन्तु यहां दिग्दर्शन न्यायसेही यत्किञ्चित् लिखा जाता है।

१-प्रेम रूपमें भगवान्का अवतरण-यह भगवान् श्रीकृष्णके जन्मसे पूर्व देखनेमें नहीं आया था। मर्यादा पुरुषोत्तम रामचन्द्रजीके जीवन चरित्रमें स्थान स्थानपर प्रेमकी झलक जरूर दीख पडती है परन्तु वह उस उत्कृष्टताको नहीं पहुँचती जिसको भगवान् श्रीकृष्णकी लीलाएं प्रगट करती हैं। युगधर्मानुसारतः ऐसा होना भी लाजमी था। कलियुगका आरम्भ होनेवाला था जिसमें भक्ति प्रेमही साधकोंका एकमात्र सहारा होना था। सो उस समय स्वयं भगवान्काही प्रेम पाठ पढाना समुचित था क्योंकि प्रेमस्वरूप भगवान्से बढकर और कौन प्रेमका पाठ यथोचित रूपमें पढा सकता है? प्रेमकी सभी भूमिकाओंमें भगवान् अपना आविष्कार करते हैं।

प्रथम वात्सल्य प्रेमके रूपको देखिये। हमने बहुतसे महानुभावोंके जीवनचरित्रमें उनकी वात्सल्य-लीलाओंको पढा है। परन्तु कहीं ऐसी अद्भुत, मनोरञ्जक, हृदयाकर्षक

मनोहर तस्वीर नहीं देखी जो कि भगवान् व्यासजीने श्रीमद्भागवतमें भगवान् कृष्णकी लीलाओंकी खेंची है। दुनियाभरमें कोई ऐसी माता न होगी जो यशोदाके मातृप्रेमसागरकी लहरोंको उछलते देखे और उसके भीतर मातृ-प्रेम उछाला न मारे। पूरा आनन्द तो भगवान् वेदव्यासजीके मधुर और रसीले शब्दोंमेंही मिलेगा। परन्तु हम तो यहां दो चार शब्दही कहकर चुप हो जाना चाहते हैं। बालकृष्ण माता यशोदाकी गोदमें बैठा स्तन-पानकर रहा है। वह बालकृष्ण जो सारे संसारकी लक्ष्मीका पति है। ब्रजके ग्वालबाल इसे घेरे खडे हैं। यशोदा प्रेमभरे शब्दोंसे भगवान्को लोरी दे रही है।

अङ्काधिरूढं शिशुगोपगूढं । स्तनं धयन्तं कमलैककान्तम्॥ सम्बोधयामास मुदा यशोदा। गोविन्द दामोदर माधवेति ॥

जब भगवान् कृष्ण जरा बडे हो जाते हैं तो अपने भोले भाले निष्पाप आचरणों और बालक्रीडाद्वारा शिक्षा देते हैं कि बालकोंका स्वाभाविक भोजन घी, दूध, दही और माखनही होना चाहिये — इसकी तस्वीर एक कविने यों खेंची है:—

तिरछे चितवन चोरी करत।
मैयाहु निरखत सुतको छल, उर अति आनंद भरत॥

बाल्यावस्थामें भगवान्का नाम मनमोहन या मोहन पड गया था। इसीसे उनकी सर्वमनोरञ्जकता टपक रही है। सभी माताएं अपने बच्चोंको सुन्दर वस्त्रभूषण पहिनाती हैं और खुशी होती हैं परन्तु यशोदाकी खुशीमें एक विचित्रही लचक है। इसका चित्र यों खेंचा गया है:—

सुभग शृंगार निरख मोहनको जसुमति अति हिये फूली। ठिठक रही हारै पहरावत, तनमनकी सुधि भूली॥

जब भगवान् घुडलियों चलने लगे हैं उस समयके दृश्यका चित्र यह है:—

दोर्भ्यां दोर्भ्यां व्रजन्तं व्रजसदनजनाह्वानतः प्रोल्लसन्तम्। मन्दं मन्दं हसन्तं मधुरमधुवचो नेति नेति ब्रुवन्तम्॥ गोपाली पाणिनालीतरलित वलयध्वानमुग्धान्तरालं। वन्दे तं देवमिन्दीवर-विमलदलश्यामलं नन्दबालम्॥

अब जरा बडे होते हैं और ग्वालबाल सखाओंके संग गौवोंको लेकर यमुना तटपर जाते हैं तो उस समयका दृश्य श्रीमद्भागवत (१०।२३।११) में यों खेंचा है:—

श्यामं हिरण्यपरिधिं वनमाल्यवर्ह
धातु प्रवाल नटवेषमनुव्रतान्ते।
विन्यस्त हस्तमितरेण धुनानमब्जम्
कर्णोत्पलालक कपोल मुखाब्जहासम्॥

किंबहुना बालकृष्ण न केवल अपनी माता यशोदाके प्रेमपात्र थे, अपितु व्रजकी सकल नर नारियों, बच्चों, बूढों यहांतक कि पशुपक्षियोंके भी आंखोंके तारे बने हुए थे। उनकी वंशीकी सुरीली तान न केवल मनुष्योंकेही मनोंको अपितु देव, गन्धर्व, तथा पशुपक्षियोंके भी हृदयोंको खेंचनेवाली थी। इसका चित्र श्रीमद्भागवतमें बडेही विचित्र रीतिसे खेंचा है।

एक रोज शरद् ऋतुकी पूर्णिमाका चान्द खिला हुआ है। यमुनाका तट है। मन्द मन्द सुहावनी वायु बह रही है। यमुना जलकी झीनी झीनी गुनगुनाहट मन्द वायुके स्वरमें अपना स्वर मिला रही है। भगवान् कृष्ण आज अपने दिव्य प्रेमकी झलक दिखानेके लिये वंशीकी मधुर ध्वनि निकालते हैं। और फिर क्या हुआ उसका कुछ दृश्य एक कवि यों दिखलाते हैं:—

श्यामने मुरली मधुर बजाई।
सुनत टेर तनु सुध बिसरी सब गोपाल बालिका धाई॥ लंहगा ओढे, ओढना पहिरे कंचुकि भूलि पराई। नकवेसर डारे श्रवणनमें अद्भुत साज सजाई। धेनु सकल तृण चरन बिसाऱ्यो ठाडी स्रवन लगाई। बछरनके थन रहे मुखनमें सो पय पान भुलाई॥ पशु पच्छी जहं तहं रह ठाडे मानो चित्र लिखाई। पेड पहाड प्रेम वश डोलें जड चेतनता आई॥ कालिन्दी प्रवाह नहीं चाल्यो जलचर सुधि बिस राई शशिकी गति अवरुद्ध रहे नभदेव विमानन छाई।

धन्य बांस की बनी मुरलिया बडे पुण्य कर आई।
सुरमुनिदुर्लभरुचिरवदन नित राखत स्यामलगाई

फिर भगवान् रासलीला रचते हैं। रासलीला क्या है? मानो एक तरफ भगवान् भक्तवत्सलके भक्तवात्सल्यका प्रचुर प्रमाण, दूसरी ओर भक्त-शिरोमणि गोपियोंकी भक्तिका कडा इम्तहान। इसका पूरा रस, तथा असल रहस्य, तो भागवतकेही शब्दोंमें मिलेगा। हम तो केवल इतनाही कह सकते हैं कि अनन्य भक्ति, शुद्ध अनुराग, अगाध प्रेमका वास्तविक स्वरूप, जिसके रंग चढ जानेसे भक्त अपने सांसारिक बन्धुओं सुखोंसे नाता तोडकर भगवत्प्रेममें निमग्न हो जाता है, ऐसा संसारके किसी भी पुस्तक या अवतारके जीवनमें नहीं पाया जाता। कोई २००० वर्ष हुए अर्थात् भगवान् कृष्णके कोई ३००० वर्ष पीछे भगवान् ईसामसीहने भी शब्दोंमें ऐसा उपदेश किया है परन्तु ऐसा जाज्वल्यमान प्रत्यक्ष दृश्य नहीं दिखाया जैसा भगवान् कृष्णने दिखाया।

भगवान् कृष्णने भी तो यही कहा है
ये दारगार पुत्राप्तान् प्राणान् वित्तमिदं परं।
हित्वा मे शरणं याताः कथं तांस्त्यक्तुमुत्सहे॥

भगवानने इसी अवस्थामें अर्थात् ६।७ वर्षकी उमरमेंही चीरहरणकी लीलाद्वारा जहां एक तरफ स्त्रियोंके नग्न होकर नदियों या तडागोंमें स्नान करनेकी घृणित प्रथाके प्रतिकूल रोषपूर्ण विरोध किया, वहां दूसरी ओर आत्मीय जीवनका एक बडा गूढ रहस्य भी दर्शाया है। अर्थात् कोई पुरुष आत्मिक जीवनमें प्रवेश नहीं कर सकता जब-तक कि वह अपने ऊपरसे अहन्ता और ममताकी चादरोंको नहीं उतार सकता। सारांश यह है कि ब्रजमें रहते हुए बाललीला करते करते भगवान्ने वात्सल्यप्रेम, सख्यप्रेम, मधुरप्रेम, दास्यप्रेम, शांतप्रेम इत्यादि सभी प्रकारके प्रेमोंके उदाहरण सम्पादन किये हैं। सबके उदाहरण देना इस छोटेसे लेखके क्षेत्रसे बाहर है।

२—जहां एक तरफ भगवान्ने प्रेमकी मुरली बजाकर भक्तों और रसिकोंके मनोंको मोहा है वहां दूसरी तरफ अपने सुदर्शन चक्रद्वारा उन विनाशकारी शक्तियों (forces) का ह्रास भी किया है जो धर्मपथपर चलनेवालोंके रास्तेमें प्रतिबंधक थे। इनमें सबसे बढकर उनके मामा कंसही थे जिन्होंने अपने बचावके लिये बालकृष्णको मारनेके लिये अनेक प्रकारके कुटिल उपाय किये थे। इस सबका इतिहास यह प्रकट करता है कि भगवदिच्छाके आगे मानुषी होशियारीकी कोई गति नहीं है। श्रीमद्भागवतमें इस विषयपर पूरा प्रकाश डालते हुए भगवान् वेदव्यासजीने यह दर्शा दिया है कि भगवान्की पालन पोषणरूपी शक्ति विष्णु भगवान् किस प्रकार अपने शंख (शब्दशक्ति) चक्र (क्रियाशक्ति) पद्म (सौन्दर्य और प्रेमशक्ति) तथा गदा (दण्डशक्ति) द्वारा नाना रूप धरकर इस विश्वको धारण कर रहे हैं। भगवान् कृष्ण उस शक्तिक एक प्रत्यक्ष मानुषी रूपही तो हैं।

३—भगवान् कृष्णकी लीला नाटकका तीसरा अङ्क राजनीतिज्ञताका अनुपमेय दृष्टान्त है। महाभारतान्तर्गत सभी लीलाओंको यहां उद्धृत करना तो असम्भवही है। परन्तु यदि कोई उस भागको जो भगवान् श्रीकृष्णने पांडव कौरव युद्धके सम्बन्धमें लिया है, विचारपूर्वक पढेगा तो वह इस नतीजेपर आए बिना नहीं रहेगा कि संसारके किसी देशके या समयके इतिहासमें भगवान् कृष्णसे बढकर कोई भी नीतिज्ञ राज्य-नेता नहीं दीख पडता। कुटिल नीतिद्वारा धर्माधर्मका विचार छोडकर काम निकालनेवाले स्वार्थी राज्यनेता तो बहुत मिलेंगे, परन्तु धर्मानुकूल राजनीतिको वर्तकर इष्टफलको, जो जनताके धर्मार्थ-काम-मोक्षरूप जीवन पुरुषार्थमें सहयोगी हो, प्राप्त करना भगवान् कृष्णकीही अप्रमेय नीतिज्ञताका काम था। कहीं कहीं उनकी नीतिपर अनीतिज्ञ पुरुष कुटिलताका दोषारोपण भी करते हैं। परन्तु वही जो भगवान्के दिव्य जन्म और कर्मके रहस्यको नहीं समझते। क्या हम बहुधा संसारमें ऐसा नहीं देखते कि जब कभी किसीपर बडा दुःख या आपत्ति आन पडती है तो वह कहा करता है, 'हे भगवान्, मैंने तेरा ऐसा क्या बिगाडा था जो तू आज मुझे ऐसा दुःख दे रहा है!' मैंने तो अपनी जानकारीमें कभी कोई पाप ऐसा नहीं किया था इत्यादि। परन्तु सभी ईश्वर-विश्वासी ऐसा जानते हैं कि भगवान् तो सदा दयालुही है। वह कदापि किसीको दुःख नहीं देता। दुःखसुखके कर्ता भोक्ता हम स्वयंही हैं। यदि हम ठीक समझें तो

कड़ेसे कड़े दुःखमें भी हमें उसकी दयाका हाथ नजर आवेगा। इसी प्रकार भगवान् कृष्णकी नीतिमें भी नजर-वालोंको सदा दया और न्यायके अंकुर नजर आवेंगे।

इससे बढ़कर न्यायशीलता क्या होगी कि अपने वंश यदुकुलको भी उनकी उद्दतताका फल दिये बिना नहीं छोड़ा। कंसवध, चाणूर-वध, जरासन्ध-वध, शिशुपाल-वध, पांडव-सहायता, दुर्योधनके साथ बर्ताव, कौरवोंके यहां दूत बन-कर जाना, दुर्योधनका भोजन छोड़कर विदुर-घरका भोजन खाना, कौरवोंके क्रोधको शान्त करना, युधिष्ठिर, अर्जुन, कुन्ति और द्रौपदीको धैर्य देना, अपने विरोधीको मीठे परन्तु सत्य शब्दोंसे अपनी रायका बनाना, बड़ी बड़ी तथा कठिन समस्याओंको बातों बातोंमें सुलझा देना इत्यादि अनेक घटनाएं ऐसी हैं जो भगवान् कृष्णकी नीति-निपुणताकी उत्कृष्टताको दर्शाती हैं।

४. आदर्श मित्रता तथा सेवकके रूपमें।

पांडवोंपर जो अत्याचार हुए उनमें भगवान् कृष्णने जो मित्रभावसे सहायता की है वह आपको दुनियाके किसी भी इतिहासमें नहीं मिलेगी। राजसूय-यज्ञमें प्रधान होकर भी अतिथियोंके पांव धोना, अर्जुनके रथका सारथी बनना, द्रौपदीकी भरी सभामें लाज रखना, अभिमन्युकी मृत्युपर अर्जुनका बड़ी टेढ़ी शपथ लेना और उससे उसको बचाना इत्यादि तथा द्वारिकापुरीमें ऐश्वर्य प्राप्त करके भी अपने सहाध्यायी सुदामाको न भूलना, अपितु उसका आदर बड़े प्रेमसे करना इत्यादि अनेक घटनाएं दर्शाती हैं कि भगवान्का दिल कितना मैत्र्यस्नेहसे सना हुवा था।

५. भगवान् मायावीके रूपमें।

उपनिषदोंने कहा है 'मायां तु प्रकृतिं विद्यात् मायिनं तु महेश्वरम्'। स्वयं भगवान्ने भी गीतामें कहा हैः—

दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते॥ (७।१४)
माययाऽपहृतज्ञाना आसुरं भावमाश्रिताः॥ (७।१५)
भ्रामयन्सर्वभूतानि यंत्रारूढानि मायया॥ (१८।६१)

सारे महाभारत या भागवतको पढनेसे आपको पता लगेगा कि जो पुरुष साधारण पुरुष थे, भगवान्के भक्त या ज्ञानी होनेका दम नहीं भरते थे उनको भगवान्ने सदाही सीधा रास्ता बताया है। केवल परीक्षा उन्हींकी ली है जो अपनेको धर्मज्ञ, धर्मपुत्र, शास्त्रज्ञ और भक्त होने-का दावा करते थे। अपने भक्तों, अपने प्यारोंको अभिमानके गढ़ेसे बचाना भगवान्काही काम है। किस तरह बचाया जावे यह तो बचानेवालाही जानता है कि किस स्थानमें क्या नीति बर्ती जावे। माता अपने बच्चेको जब चलना सिखाती है तो कभी कभी उसके रास्तेमें बड़ी बड़ी ईंटें या अन्य मार्ग रोकनेवाली वस्तु डाल देती है, वह देखनेके लिये कि वह उससे किस प्रकार बचकर निकलता है। इसी प्रकार भगवान्ने भी अर्जुन, भीम और युधिष्ठिरकी परीक्षा ली है।

महाभारतका युद्ध हो रहा है। भीष्मपितामह चढ़ा चला आरहा है। उसके जीते पांडवोंका जीतना असम्भव है। युधिष्ठिर भगवान् कृष्णके पास जाकर अपने मनकी घबराहट प्रकट करते हैं। भगवान् उसको तसल्ली देते हैं। अगले दिन जब मौका आया तो भगवान्ने घोड़ोंकी बागडोर छोड़ अपनी प्रतिज्ञाके विरुद्ध, कि मैं इस लड़ाईमें शस्त्र नहीं उठाऊंगा, शस्त्र उठाते हैं। अर्जुनने उनको रोका, कि आप अपनी प्रतिज्ञा भङ्ग न करें हमारा चाहे कुछ हरज हो। भगवान् फिर दौड़ते हैं, अर्जुन फिर रोक लेता है। युधिष्ठिर भी रोकता है। भगवान् रुक जाते हैं। यहां परीक्षामें उत्तीर्ण हो गए। परन्तु अभीतक युधिष्ठिरके अन्दर एक कमजोरी थी कि वह कठिन समस्याओंके हल करनेमें दूसरोंका सहारा लेता था। स्वयं निर्णय करने-की दृढ़ता नहीं आई थी। इस कमजोरीका प्राकट्य द्रोण-वधके समय हुआ। द्रोण चढ़ा आ रहा है। उसको रोकना असम्भव है। उसका एकही इलाज था कि उसका यह सन्देश भेजा जावे कि अश्वत्थामा मारा गया। भीमने अश्वत्थामा नाम हाथीको मारकर कह दिया कि अश्वत्थामा मारा गया। परन्तु द्रोणाचार्य केवल युधिष्ठिरकाही विश्वास करता था, अन्यका नहीं। और युधिष्ठिर यह झूट बोलनेको तैय्यार नहीं था जबतक कि भगवान् कृष्ण उसको यह सलाह न दें। बस यही उसकी कमजोरी थी। उसको चाहिये था कि वह कभी भी अपनी आत्माके प्रतिकूल झूट न बोलता, चाहे स्वयं ईश्वर भी आकर कहे। परन्तु ऐसा

न हुआ। भगवान्ने उसकी परीक्षा ली। कह दिया कि बेशक तुम ऐसा कह दो। यद्यपि युधिष्ठिरने यह कहकर कि 'अश्वत्थामा हतो नरो वा कुंजरो वा' अपनेको झूठसे बचा हुआ समझा परन्तु भगवान्के नियमोंने इसको नहीं छोडा। उसका तुरन्तही दंड मिला, क्योंकि उसके दिलमें झूठ बोलनेकी गुप्त इच्छा तो थी परन्तु वह उसके लिये भगवान्का प्रमाण चाहता था। अतः उसका कथन पापही था। उस दंडसे उसकी आंख खुली। पुनः वह इतना खबरदार हुआ कि अपने कुत्तेको भी स्वर्गमें जाते समय नहीं छोडा और इस परीक्षासे यह लाभ हुआ कि युधिष्ठिर अब आगेसे अधिक सत्यनिष्ठ हो गया।

६–विश्वरूपदर्शन–

अर्थात् भगवानही इस सारे विश्वके पसारेमें विविध रूपमें व्यापक होकर इस प्रपंचको धारण कर रहा है। अतः मनुष्यको चाहिये कि वह सबके अन्दर भगवानकोही समझकर उससे शुद्ध व्यवहार करे। दूसरोंको दुःख देना या धोखा देना भगवान्कोही दुःख या धोखा देना है।

दृष्टं श्रुतं भूतभवद् भविष्यत्
स्थाणुश्चरिष्णुर्महदल्पकं च।
विनाऽच्युताद् वस्तुतरां न वाच्यम्
स एव सर्वं परमार्थभूतः॥ (भा० १०।४६।४३)

अर्थात् जो कुछ देखा या सुना जाता है, चाहे वह भूत हो, वर्तमान हो या भविष्यत्; स्थावर हो या जंगम, महान् हो अथवा अल्प, ऐसी कोई वस्तु नहीं है जो भगवान् कृष्णसे पृथक् हो।

तथा–अहं हि सर्वभूतानामादिरन्तोऽन्तरं बहिः॥
भौतिकानां यथा खं वा भूर्वायुर्ज्योतिरङ्गनाः॥
नरेष्वभीक्ष्णं मद्भावं पुंसो भावयतोऽचिरात्॥
स्पर्धाऽसूया तिरस्काराः साहंकाराः वियन्ति हि॥

७–जगद्गुरु रूपमें–

हम इसके सम्बन्धमें पूर्व कह आए हैं। उसका दुहराना भी उचित नहीं और उससे अधिक भी कहना लेखका कलेवर बढानाही है।

अब अंतमें एक शंकाका समाधान करना जरूरी है और वह यह है कि क्या ही अच्छा होता यदि भगवान् अर्जुनको युद्धके लिये न प्रेरते। यदि अर्जुन युद्धसे हट जाता तो इसमें केवल पांडवोंकी ही हानि थी। लाखों योद्धा, शूरवीर, बडे बडे नेता, भीष्मसे आदर्श पुरुष, द्रोण, कर्णसे युद्धविशारद बच जाते और भारतकी जो हानि हुई वह न होती। आज भारत जो गुलाम देश बना हुआ है यह इस महाभारत युद्धकाही फल है। अर्जुनने बहुतही ठीक सोचा था कि अपने बान्धवोंके रक्तसे हाथ रंगनेकी अपेक्षा भीक मांग कर गुजारा करना अच्छा है इत्यादि।

समाधान-प्रश्न तो बडा गंभीर प्रतीत होता है और स्थूल दृष्टिसे सत्य भी मालूम होता है। परन्तु जब हम आध्यात्मिक दृष्टिसे इसपर विचार करेंगे तो इसका थोथापन हमको मालूम हो जावेगा। प्रथम तो इसमें भी निश्चय नहीं कि यदि अर्जुन न लडता तो अवश्य भारतका भला होता। कौरवोंने जो अत्याचार निष्पाप और निर्दोष पांडवोंपर किये, उनकी तरफ यदि ध्यान किया जाय तो कौनसा मानुषी हृदय है जो टुकडे टुकडे न हो जाय? भीमको विष देना; लाक्षागृहमें उनको जिन्दाही दग्ध करनेका षड्यंत्र रचना, धोखेसे जुएमें हराना, द्रौपदीका भरी सभामें नग्न करना, पांडवोंको १२ वर्ष बनवास और एक वर्ष अज्ञातवास देना, और अज्ञातवासमें भी उनको प्रकट करनेका प्रयत्न करना ऐसे काम हैं जिनको कोई शैतानसे शैतान भी करता हुआ शरमायेगा। परन्तु कौरवोंने दिन धौले इनको किया, धृतराष्ट्रने इनका अनुमोदनही किया। विदुर, द्रोणाचार्य, सारी प्रजा, यहांतक कि भीष्मपितामहको भी उनके प्रतिकूल अपनी आवाज उठानेका साहस न होना प्रकट करता है कि उस समय भारतकी जातीय शीलमें कितनी कमजोरी आगई थी। न जाने इस नीति रीतिके नेता भारतको कौनसे गढेमें गिराते। यदि वह विजय पा जाते और जिन्दा रहते, न जाने कितनी द्रौपदियोंको भरी सभामें नग्न करते, और साथही यह भी है कि यदि दुष्टोंको उनकी दुष्टताका दण्ड न मिले तो प्रभुके न्यायको बड़ा लगता है। और कर्मफलके नियमपरसे विश्वास उठ जाता है। इससे जो हानि होती उसका अन्दाजा कौन लगा सकता है? अतः स्थूल दृष्टिसेही हम इस प्रश्नमें कोई सार नहीं पाते।

सूक्ष्म दृष्टिसे विचारें तो हमें भगवान्‌की रचना और विधानमें कोई शंकाही नहीं रहती। जो कुछ हो चुका, या हो रहा है, या होगा उसके पीछे भगवान्‌की इच्छा है। बिना उसकी इच्छाके एक पता भी नहीं हिल सकता, और भगवान्‌की इच्छाके पीछे भी कोई न कोई रहस्य हुआ करता है जो स्थूलदृष्टि पुरुषोंको नहीं दीखा करता परन्तु सूक्ष्मदर्शी पुरुषोंको साक्षात् दीखता है।

अर्थात् सारी रचना एक रहस्य है जो स्थूलदृष्टि पुरुषोंकी समझमें नहीं आता, जहां तहां जो कुछ दीख रहा है उसकी जड़में कोई नियम काम कर रहा है, जिसको साधारण पुरुष नहीं समझ सकते। जो लड़ाई भिड़ाई दीखती है वह किसी समताके वास्ते है, जो आज समझमें नहीं आती। हम बहुधा ऐसा देखते हैं कि व्यक्तिगत हानिसे समष्टि जगत्‌को लाभ होता है। निस्सन्देह यह कथन अक्षरशः सत्य है।

संसारके इतिहासमें ऐसी अनेक घटनाएं होती रहती हैं कि जिनका फल तत्काल तो नजर नहीं आता बल्कि उस समय तो वह एक आपत्तिही प्रतीत होती है। परन्तु कुछ दिनके बाद पता लगता है कि उससे सार्वभौम लाभ हुआ है। १६६६ में लन्दनमें जो आग लगी थी उसको उस समय तो एक ईश्वरीय कोप समझा गया था, परन्तु पीछे जब उसकी राखपर नया लन्दन बसा तो उसका लाभ मालूम हुआ। ऐसे अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं। इस भ० भा० युद्धका भी बड़ा लाभ यह हुआ है कि भारतकी विद्या अर्थात् अध्यात्मविद्याका कोष जो वर्षोंसे भारतमें दबा और छिपा पड़ा था, सारे संसारमें फैलनेका अवसर प्राप्त करने लगा। इस युद्धसे जहां बहुत राजाओंको यह शिक्षा मिलती है कि तुम राज्याधिकारसे च्युत हो जाओगे यदि तुम न्यायानुकूल राज्य नहीं करोगे; वहां ब्राह्मणोंको यह शिक्षा मिलती है कि तुमको भगवान्‌ने जो ब्रह्मविद्या दी थी, वह संदूकोंमें बन्द करके रखनेके लिये नहीं दी थी, उसका हक सभी अधिकारी पुरुषोंको है। हम प्रत्यक्ष देखते हैं कि भारतके इस नुकसानसे सारे जगत्‌का लाभ हुआ है। भारतकी शस्त्र-शक्ति कमजोर होनेसे भारतमें विदेशीय आक्रमण हुए। पहिला आक्रमण यूनानियोंका था। यूनानी यहांसे कई प्रकारकी विद्याओंको लेगए और उनके द्वारा वे सारे युरोपमें फैल गईं। और भी जो जो आक्रमण हुए, उनका यही परिणाम हुआ। विदेशीय संस्कृति और स्वदेशीय संस्कृतिके मिलनेसे परस्पर लाभही होता है। अब वह दिन दूर नहीं है जबकि सारा जगत् एकही कुनबा हो जावेगा और इसमें हमारा विश्वास है कि भारतकी आध्यात्मिक विद्या और विचारोंको उच्च स्थान मिलेगा। ईश्वर अपने मन्तव्यको कई प्रकारसे पूरा करता है।

अतः हमें यही विश्वास करना चाहिये कि जो भगवान् करता है वह सबकी भलाईके लियेही करता है। विज्ञ पुरुष उससे लाभ उठा लेते हैं जबकि अनभिज्ञ जलते और कुढ़ते रहते हैं। आज जन्माष्टमीका त्यौहार है। मन्दिरोंमें चहल पहल बहुत है परन्तु अपने अन्दरमें कृष्णको पैदा करनेकी परवाह बहुत कम है।

भगवान्! ऐसी कृपा करो कि प्रत्येक हिन्दूका हृदय आपका पंघूड़ा बन जावे। प्रत्येक हिन्दू, नहीं नहीं प्रत्येक मनुष्यका घर आपका वृन्दावन बन जावे। प्रत्येक पुरुष आपका अर्जुन बन जावे। और प्रत्येक स्त्री आपकी गोपी बन जावे, और यह लेखक सदा आपके चरणोंकी धूलि बन जावे! बस लेखनी रुक जाती है और यह दास आपके चरणोंमें झुक जाता है!

विजयका मार्ग

(ले० श्री० पं० गोपाल नीलकण्ठ दाण्डेकर, औंध)

बहोत पुरानी कहानी है। उस समयकी कि जब कौरव तथा पाण्डवोंका जन्म भी न हुवा था। तब ब्राह्मण युद्ध करना जानते थे। क्षत्रियोंके अन्यायके लिये शूद्रतक उन्हें जवाब पूछ सकते थे। कोई भी वर्ण अपने सहज कर्मोंको छोडकर किसी दूसरे वर्णका कर्म करके उस वर्णके जीवन-निर्वाह चलानेमें बाधा डाले, यह सहन किया न जाता था। समाज आजके समान न तो अकर्मण्यतामें तत्पर था, न 'को विधिः को निषेधः' ऐसी निर्बन्धशून्य अवस्थामें विचरण करता था। किसी भी वर्णके अन्याययुक्त आचरणके लिये उसे दण्ड देनेमें समाज-पुरुष समर्थ था।

तब हैहय कुलोत्पन्न क्षत्रिय राजा प्रजाका पालन करते थे। अचानक उनके मनमें विचार निर्माण हुवा कि 'इन ब्राह्मण, वैश्य तथा शूद्रोंकी आवश्यकता क्या? हम अकेलेही इन तीन वर्णोंके कर्मोंको निभा सकते हैं। हमारे-मैंके कुछ अध्ययन-अध्यापन-यजन-याजनात्मक ब्रह्मकर्म करेंगे। कुछ वाणिज्य, गौकी रक्षा तथा कृषिकर्म कर लेंगे, और कुछ सेवा भी करेंगे। जब हम अकेलेही इन तीन वर्णोंके कर्म करनेमें समर्थ हैं, तब फिर हम इनपर क्यों निर्भर रहें ?-'

उन्होंने जो सोचा था उसे कर छोडा। ब्राह्मण, वैश्य तथा शूद्र इनके कर्मोंको वे स्वयमेव करने लगे। इन तीन वर्णोंके लिये कोई काम न बचा। तब वे लोग -व्याकुल हो उठे। सब ब्राह्मण एकत्रित हुवे। उन्होंने अपने नेताओंको हैहयोंकी ओर भेजा। जब वे ब्राह्मण नेता हैहयोंके पास पहुंचकर उन्हें उत्तर पूछने लगे, तब हैहयोंने कहा, 'ब्राह्मण देवता, क्या आपही पढा सकते हैं ? हम नहीं पढा सकते ? क्या आपही याजन करेंगे ? हम नहीं कर सकते ? यदि हमभी मनुष्यही हैं, हमें भी ईश्वरने बुद्धि प्रदान की है, तब फिर हम आपपर क्यों अवलंबित रहें ?

ब्राह्मण नेताओंने पूछा, "फिर हम क्या करें ?"

"यह बात आपके स्वाधीन है।"

"आप हमारे लिये कोई उपाय नहीं ढूंढ सकते ?"

"ब्राह्मण देवता, हम असहाय्य हैं"

"तब यही आपका आन्तिम निश्चय है।"

"जो कुछ आप समझें।"

क्षुब्ध होकर ब्राह्मण वापस लौटे।

ठीक यही हाल वैश्य तथा शूद्रोंको हुवा। उनके नेता जब हैहयोंके पास गये, तब हैहयोंनें उन्हें इसी प्रकारके उत्तर देकर वापस लौटाया।

दिन बीतते रहे। ये तीनों वर्ण आजीविकारहित हो बैठे। अन्तमें उस अवस्थाने इनके मनमें विद्रोह पैदा किया। ब्राह्मणोंने निश्चय किया कि इन हैहयोंको दण्ड देना चाहिये। वैश्य तथा शूद्रोंने भी यही सोचा।

> श्रूयते च महाप्राज्ञ हैहयानमितौजसः।
> अभ्ययुर्ब्राह्मणाः सर्वे समुच्छ्रितकुशध्वजाः॥ ४॥
> तानभ्ययुस्तदा वैश्याः शूद्राश्चैव पितामह।
> एकतस्तु त्रयो वर्णा एकतः क्षत्रियर्षभाः॥ ५॥
> (म. भा. उ. १५६)

ब्राह्मण अपने कुशचिन्हाङ्कित ध्वज उभारकर क्षत्रिय हैहयोंपर टूट पडे। दूसरी ओरसे वैश्योंने उनपर हमला किया तथा तीसरी बाजूसे शूद्र भी हैहयोंपर चढाई करके आगये।

परन्तु क्षत्रियोंने अपनी सिद्धता खूब अच्छी तौरसे की थी। एक तो क्षत्रियोंको युद्ध करनेका अच्छा अभ्यास था। दूसरे पक्षमें ब्राह्मण, वैश्य तथा शूद्र ये लडना जानने-पर भी अनभ्यस्त थे। इस कारण हैहयोंने इन तीनोंका सहजहीसे पराभव किया-

> ततो युद्धेष्वभज्यन्त त्रयो वर्णाः पुनः पुनः।
> क्षत्रियाश्च जयन्त्येव बहुलं चैकतो बलम्॥ ६॥

कई बार इन तीन वर्णोंने सुसंगठित क्षत्रियोंपर हमले किये। परन्तु प्रत्येक समय उन क्षत्रिय वीरोंने इस तिगुने बलका पराभव किया। बार बार पराजित होनेपर ब्राह्मण आदि तीनों वर्ण इकट्ठे होगये, और उन्होंने सोचा, "हम तीनों वर्ण संख्यामें इतने अधिक होनेपर भी क्षत्रिय हैहय बारबार हमें पराभूत करते हैं, इसका कारण क्या है?"

उस सभामें निर्णय यह हुवा कि "चलकर हैहयोंकोही पूछें।" वह सत्ययुग था। आज यह बात असंभवनीय एवं अविचारकी प्रतीत होगी। परन्तु तब यह बात न तो अशक्य थी, न हास्यास्पद। युद्ध करनेके समय शत्रुवत् लढना, और युद्ध समाप्त होनेपर परस्परके आरोग्यकी पूछताछ निष्कपट भावसे करना, यह उस समय नियमसा बन चुका था। अत एव—

ततस्ते क्षत्रियानेव पप्रच्छुर्द्विजसत्तमाः।
तेभ्यः शशंसुर्धर्मज्ञा याथातथ्यं पितामह ॥ ७ ॥

कुछ श्रेष्ठ ब्राह्मण मिलकर हैहयोंकी नगरीमें गये। हैहयोंने उनका आदरसत्कार किया। और पूछा, "ब्राह्मण देवता, आप हमारे लायक कौनसा काम लेकर पधारे हैं?"

ब्राह्मण बोले, "अहो क्षत्रियश्रेष्ठ, हम तीनों वर्ण बारबार आपपर आक्रमण कर आते हैं, परन्तु इतनी अधिक संख्यामें होनेपर भी एक भी बार हमारी विजय नहीं होती। आप हमारे पराभवका कारण बतावें, एवं हमें विजयका मार्ग भी बतादें।"

हैहयोंने कहा, "ब्राह्मण देवता, सुनिये। हम संख्यामें कम हैं, तथा आप हमसे तिगुने हैं। परन्तु–

वयमेकस्य शृण्वाना महाबुद्धिमतो रणे।
भवन्तस्तु पृथक्सर्वे स्वबुद्धिवशवर्तिनः ॥ ८ ॥

युद्धके समय हम अपना एक नेता नियुक्त कर देते हैं। वह जो भी कुछ कहेगा, उसीके अनुसार हम कार्य करते हैं। उसने लढनेका आदेश दिया तो हम लढते हैं, उसने "ठहरो" कहा तो रुक जाते हैं। फिर भलेही उस समय हमारा विनाश होता हो। हम अपने नेताकी आज्ञाके विरुद्ध एक तिनका भी इधरका उधर नहीं करते। एकचालकानुवर्तित्वही हमारी विजयका कारण है।

और वही तुम्हारा सुन लीजिये। तुम्हारेमें प्रत्येक अपनी बुद्धिके अनुसार लढता है। जब इच्छा होती है तब वह लढता है। थक जानेपर बैठ जाता है। कोई किसीकी सुनता नहीं। चारों ओर अव्यवस्था फैली हुई है। ब्राह्मणोंमें प्रत्येक अपने मनकी चाल चलता है। वैश्य तथा शूद्रोंके भी वही हाल हैं। इस कारण एकके नेतृत्वमें युद्ध करनेवाले हम विजय पाते है और आप लोग बहुसंख्य होनेपर भी नहीं जीत सकते। यही तुम्हारे पराभवका कारण है।"

ब्राह्मण नेता बुद्धिमान् थे। सब कुछ समझ गये। वापस लौटकर उन्होंने अपने पक्षको यह सब वृत्तान्त सुनाया। दूत भेजकर वैश्य तथा शूद्रोंके नेताओंको बुलवाया गया, वे आनेपर उन्हें सर्व परिस्थिति समझा दी गई। उनकी सम्मतिसे–

ततस्ते ब्राह्मणाश्चक्रुरेकं सेनापतिं द्विजम्।
नये सुकुशलं शूरमजयन्क्षत्रियांस्ततः ॥ ९ ॥

एक अत्यन्त कुशल, शूर तथा नेतृत्व करनेमें पटु ऐसे द्विजको इन तीनों वर्णोंका सेनापति बनाया गया। और फिर उसके नेतृत्वमें तीनों वर्णोंने एकत्रित होकर उसके बताये हुवे मार्गसे क्षत्रियोंका पराभव किया।

कहानी तो छोटीसी है। परन्तु इस गागरमें सागर भरा हुवा है। तब क्या समाज एक नेताकी आज्ञामें चलकर विजयकी ओर अग्रेसर होगा?

हमारा दैनिक भोजन

कैसा होना चाहिए

(ले०- श्री. विश्वमोहन एम्. ए.)

हमारा शरीर थोडेसे तत्वोंका खिलौना है। शरीरमें आधेसे अधिक पानी है। इन सब तत्वोंको हम भोजन विशेषकर साग-भाजियोंद्वारा प्राप्त करते हैं।

भोजन इसलिए जरूरी है कि (१) शरीर बढ सके, (२) शरीरमें बल आवे, उसमें गर्मी रहे और (३) घिसे हुवे तन्तुओंकी कमी पूरी हो।

शरीरको बनाये रखने, उसके बिगडने, उसमें विकार पैदा करने और विकारोंको निकालनेमें भोजनका बहुत बडा हाथ है। इसलिए खानेके मामलेमें हमें बडी सावधानी बरतनी चाहिए। ज्यादा खानेसे शरीरपर अपनी शक्तिसे अधिक जोर पडता है, और वह थोडे दिनोंमें जवाब दे देता है।

अधिक भोजन रोग पैदा करनेवाला, आयु कम करनेवाला होता है। भोजन स्वादके लिए नहीं बल्कि शरीरकी आवश्यकताएँ पूरी करनेके लिए है।

उपवाससे लाभः— (१) पाचन अंगोंको आराम मिलता है जिससे वे अपना काम अच्छी तरह कर सकें। (२) शरीरके भीतरकी सफाई हो जाती है। (३) स्वास्थ्य सुधरता है। अतएव हर महीनेमें कमसे कम चार मरतबा तो जरूर उपवास करना चाहिए। इसके लिए कोई भी दिन निश्चित कर लिया जाय।

भोजनके अंश

(१) प्रोटीन, (२) कार्बोहाइड्रेट, (३) चिकनई, (४) लवण, (५) पानी और (६) पोषक-तत्त्व (विटामिन)। इनमेंसे हर चीज आवश्यक है और उसे ठीक मात्रामें होना चाहिए।

(१) प्रोटीन-यह शरीर बढानेवाली वस्तु है। प्रोटीनवाले पदार्थोंमें दूध, दही, मट्ठा, पनीर, मांस, मछली, अण्डा, सलाद, पालक और अन्य हरी पत्तेवाली तरकारियाँ, पपीता, बादाम, मूँगफली, गिरियाँ, सोयाबीन (भुटवांस), (दाल, चना) हैं।

(२) कार्बोहाइड्रेट- यह शरीरका इंधन है। इससे शरीरमें शक्ति और गरमी पैदा होती है। जरूरतसे ज्यादा कार्बोहाइड्रेट खानेसे मोटापा, बदहजमी और पेचिश हो जाती है।

कार्बोहाइड्रेटवाले पदार्थोंमें अनाज, दाल, सूखा मेवा, जडवाली तरकारियाँ, फल इत्यादि हैं।

आटा, मैदा, सूजी, चांवल, साबूदाना, मक्का, गेहूँ, जौ, जई, चीनी, गुड, शहद, दूध, सेम, मटर, आलू, चुकन्दर, हाथीचक, बैंगन, करमकल्ला, गोभी, गांठगोभी, भिण्डी, पार्सनिप (हस्तफीन, जुजुर), शकरकन्द, कद्दू, लौकी, मूली, अरवी, गाजर, खजूर, अंजीर, आम, केला, अमरूद, लीची, पपीता, नाशपाती, खरबूजा, तरबूज, सिंघाडा।

(३) चिकनई-यह शरीरका सर्वोत्तम इंधन है। इसमें कार्बोहाइड्रेट या प्रोटीनसे दुगुनी ताकत पैदा करनेकी शक्ति होती है। यह आडे समयके लिए जमा की हुई खुराक है। यह रगों और पुट्ठोंको दृढ बनाती है। अधिक चिकनाईसे बदहजमी और मोटापा हो जाता है।

उदाहरणः- मक्खन, घी, तेल (काडलिवर, जैतून, सरसों, तिल्ली, अलसी, बिनौला इत्यादिके) चरबी, दूध, मलाई, पनीर, अण्डेकी जरदी, नारियल, बादाम, मूँगफली, अखरोट, काजू, पिस्ता, चिलगोजा, अन्य अन्य गिरियाँ, सोयाबीन।

(४) लवण-ये शरीरको मजबूत करते हैं। इनसे भोजन स्वादिष्ट बनता है और खून साफ होता है। अन्न और दालोंके छिलके, फल, दूध, पालक, सलाद, कुल्फा और

दूसरे साग तथा तरकारियोंके पत्तोंमें लवणकी काफी मात्रा होती है।

(५) पानी— पानी भोजन पचाने और उसे शरीरके भिन्न-भिन्न अंगोंतक ले जानेका काम करता है। यह शरीरकी जहरीली वस्तुओंको मल-मूत्र और पसीनेके द्वारा बाहर निकालता है। इससे खूनका गाढ़ापन भी ठीक रहता है।

(६) विटामिन- ये भोजनके पोषक तत्त्व हैं जो दूध, फलों और तरकारियोंमें खूब मिलते हैं। ये बहुत आवश्यक अंश हैं क्योंकि इनके अभावसे खानेके दूसरे अंशोंका पाचन ठीक नहीं होता और कई भयंकर बीमारियाँ हो जाती हैं। ज्यादा पकानेपर ये नष्ट हो जाते हैं।

पांच मुख्य विटामिन

१. विटामिन ए- इसका सम्बन्ध आँख, फेफड़ों, पेट और आँतोंसे है। यह शरीर बढ़ाता है और उसे छूतकी बीमारीसे बचनेकी शक्ति देता है। इसके अभावसे रतौंधी और आँखकी बीमारियाँ हो जाती हैं। यह निम्नलिखित चीजोंमें पाया जाता है—

चर्बी, दूध, दही, पनीर, मक्खन, घी, मलाई, अंडा, गुर्दा, कलेजी, काडलीवर आयल, पीली जड़वाली और हरी तरकारियाँ— (टमाटर, गाजर, शलजम, पातगोभी, सलाद, पालक, अजमोद, हरी मटर, शकरकन्द, लौकी), केला, नारंगी, अनन्नास।

२. विटामिन बी—इसका सम्बन्ध दिमाग, दिल, जिगर, हाजमे, खाल, रगों और पुट्ठोंसे यह शरीर बढ़ाता है, उसकी छीजन दूर करता है और पाचन और मलत्यागमें सहायता देता है। इसके अभावसे बेरी-बेरी हो जाती है। इस रोगमें हाथ पैर फूल जाते हैं, दिल कमजोर हो जाता है और प्रायः मृत्यु भी हो जाती है।

यह निम्नलिखित चीजोंमें पाया जाता है— अनाजके छिल्के, (समुचे अनाज), मटर, सेम, दूध, मट्ठा, अंडे, कलेजी, गुर्दे, खमीर, मूँगफली, गिरियाँ, खजूर, हरी और जड़वाली तरकारियाँ (गाजर,) पातगोभी, पालक, टमाटर, सलाद, प्याज, शलजम, सतावर, बैंगन, गोभी, अजमोद पार्सनिप, आलू)।

३. विटामिन सी— इसका सम्बन्ध खूनसे है। यह खूनको शुद्ध और आँतोंको स्वस्थ रखता है। इसके अभावसे स्कर्वी हो जाती है, जिसमें बल और भार कम हो जाते हैं, चेहरा पीला पड़ जाता है, मसूड़े, नाक, मूत्र और हड्डीमें छूनेसे दर्द होता है।

यह निम्नांकित चीजोंमें पाया जाता है— अंकुरित अनाज, दूध, नीबू, नारंगी, संतरा, पपीता, लीची, आम, सेब, केला, ककड़ी, ताजी हरी तरकारियाँ (टमाटर, गाजर, करमकल्ला, पालक, सलाद, आलू, चुकन्दर, प्याज, लहसुन, शलजम, ककड़ी, अंकुरित मटर, हरी सेम, शकरकन्द)।

४. विटामिन डी— इसका सम्बन्ध दाँतों और हड्डियोंसे है। इसके अभावसे बच्चोंको रिकेट और सूखा हो जाता है। हड्डियाँ टेढ़ी-मेढ़ी व कमजोर हो जाती हैं, बच्चा कुरूप हो जाता है और भूख जवाब दे जाती है।

यह दूध, मक्खन, घी, काड-लीवर आयल, अंडे, ताजे फल और हरी तरकारियाँ, पालक, टमाटर, पातगोभी, सलाद और गाजरमें खूब होता है। धूपमें नंगे बदन बैठने और इसमें बदनपर तेल मलनेसे भी इसकी कमी पूरी की जाती है।

५. विटामिन ई— यह बाँझपनको दूर करता है और दूध बढ़ाता है। यह मक्खन, अण्डेकी जर्दी, अनाजके निशास्ते, हरी कोंपलों, शहद, केले और हरी तरकारियों—पातगोभी, सलाद, प्याज, गाजर, लहसुन, भिण्डी— में पाया जाता है।

हम क्या खायें ?— भोजनमें ऊपर बताई हुई छहों चीजें उचित मात्रामें होनी चाहिए। विटामिनका विशेष ध्यान रखा जाय। हमें भोजनसे करीब २५००-३००० शरीर-विज्ञानविषयक या बड़ी कैलोरी गरमी प्रतिदिन मिलनी चाहिए। (१ शरीर-विज्ञानविषयक या बड़ी कैलोरी जो भौतिक विज्ञानवाली १००० कैलोरीके तुल्य होती है वह गरमी जो १ किलोग्राम या २.२ पौंड पानीको १ सेण्टीग्रेड गरम कर दे)।

एक ग्राम (१५.४ ग्रेन या लगभग १ माशा) चिकनाईसे ९, एक ग्राम कार्बोहाइड्रेटसे ४ और एक ग्राम

प्रोटीनसे भी ४ कैलोरी गरमी मिल सकती है ।)

(१) अनाज (बिना छिलका उतरा) और दालें...
.... कम

(२) दूध, दही, मट्ठा, घी कुछ अधिक ।

(३) अण्डे, मांस और मछली यदि खाते हों......
.... कम।

(४) हरे पत्तेवाली तथा अन्य ताजी तरकारियाँ......
...... काफी ($\frac{2}{3}$ भाग) ।

(५) फल (मौसमी) ...... काफी (औकातके अनुकूल) ।

मौसमी फल और ताजी हरी तरकारियाँ खानेसे लाभ—

(१) इनमें सब आवश्यक तत्व और विटामिन सुलभ होते हैं जो हमें तन्दुरुस्त रखनेके लिए बहुत जरूरी हैं।

(२) ये क्षारीय पदार्थ हैं और इन्हें काफी मात्रामें खाना बहुत आवश्यक है।

(३) ये जल्दी पच जाते हैं और पेट और आंतोंको साफ करते हैं। दिमाग ताजा रहता है और शरीर बहुतसे रोगोंसे बच जाता है ।

(४) तरकारियाँ सस्ती पडती हैं तथा प्रचुर मात्रामें सुलभ हैं।

(५) इन्हें हम थोडी-सी भी जगहमें और थोडे समयमें पैदा कर सकते हैं। शहरके पक्के मकानोंमें भी टमाटर, साग, धनिया, पुदीना, लौकी, तरोई, कद्दू इत्यादि पैदा करनेका प्रबन्ध किया जा सकता है। इस तरह अपने बागमें अधिक सब्जी पैदा करने और खानेसे हम इस मँहगाईमें अपनी काफी बचत भी कर सकते हैं। यों पैसा बचेगा, अन्नकी कमी दूर होगी, रोग भाग जायेंगे और स्वास्थ्य-लाभ होगा।

इसलिए हम सबको चाहिए कि अधिक सब्जी पैदा करने और खानेका संकल्प करें और इसे अपना परम ध्येय बनाकर इसका घर-घर प्रचार करें।

परती रहे न भूमि पडी।
हरी फसल हो जाय खडी॥

घर-घर खूब तरकारी पैदा करना चाहिये, क्योंकि—(क) हरी तरकारियोंमें सब विटामिन पाये जाते हैं (ख) प्रतिदिन ताजी तरकारी खानेको मिलेगी। बासी तरकारीके पोषक-तत्व नष्ट हो जाते हैं। (ग) बाजारमें तरकारियाँ बहुत मँहगी हो रही हैं। (घ) अनाजकी बचत होगी और अन्न-संकट दूर होगा। (ङ) बागवानी करना अधिक मनोरंजक और लाभप्रद धन्धा है।

भूमिका बनाना

शाक-भाजी बोनेके लिए भूमिको अच्छी तरह तैयार करना चाहिए। अच्छा होगा यदि जमीनको चौरस करके वर्गाकार या आयताकार बना दिया जाय और उसे कई छोटे-छोटे आयताकार टुकडोंमें बांटकर चौडी मेडोंद्वारा अलग अलग कर दिया जाय। मेडोंके किनारे किनारे पानी देनेके लिए नालियाँ बनाई जायँ।

चौडी-चौडी मेडोंपर जडवाली तरकारियाँ, जैसे मूली और शलजम, बोई जा सकती है। अच्छी जुताई करने और खाद डालनेके बाद बीज बोना चाहिए। बीज जमनेके बाद भी गुडाई और निराई करते रहना चाहिए।

तरकारियोंके लिए खूब सडी हुई खाद अच्छी होती है। यह भूरे रंगकी होती। हर क्यारीमें डेढ टोकरी तक खाद डाली जाय तो अच्छा हो।

जबतक अँखुए न निकल आवें, तबतक जमीनको तर रखनेका विशेष ध्यान रखना चाहिए। कीडे मकोडोंको नष्ट करनेका सरल उपाय यह है कि आधा सेर तम्बाकूके पत्तोंको कूटकर आठ सेर पानीमें बोल दीजिए और इसे २४ घण्टेतक पडा रहने दीजिए। इसके बाद आठ सेर पानी और मिलाकर उसे पौधों पर छिडक दीजिए।

बीज बोना— (१) कडे बीज पानीमें भिगोकर बोने जायें। (२) मटर और सेमको ३ इंचकी गहराईपर बोना चाहिए। किंतु सलाद और गोभीके बीज केवल चौथाई इंचकी गहरीपर। (३) छोटी-छोटी पत्तियाँ निकल आनेपर उनपर हलकी-सी राख देनी चाहिए। इससे उनमें कीडे नहीं लगते। (४) जब पौधोंमें ४ से ६ तक पत्तियाँ निकल आवे तब उन्हें उखाड कर खेतमें लगाना चाहिए।

पानी की एक बूँद भी बेकार मत जाने दो

पियाऊ, स्नान, बोर्डिंग, रसोई इत्यादिसे जो पानी मिले उसे व्यर्थ मत जाने दीजिए। उन स्थानोंसे नाली द्वारा तरकारीके खेतमें पानी लाकर उससे सींचाई करिए।

खाद– तरकारी बोनेके लिए नीचे लिखी खादें लाभ दायक होती हैं–

सडकोंका कूडा-करकट, गोबर, घोडेकी लीद, भेड और बकरीकी लेंडी, मुर्गी और कबूतरकी बीट, पत्तीकी खाद, नील, सनईके सडे गले डठल, हड्डीका चूरा, सींग, खुर तथा लकडी और कण्डेकी राख।

खाद बनानेकी कई रीतियाँ हैं जैसे 'हिल रीति', 'पिट रीति', 'बॉक्स रीति', और 'कम्पोस्ट'। 'कम्पोस्ट' की खाद सर्वोत्तम होती है। इसके लिए ३०'×१४'×१'के गढे खोद लो। मिट्टी की मेड बनाकर गहराई २' कर ली जाय। गढेमें कूडा-करकट, राख, गोबर, पशुओंका मल मूत्र मिली मट्टी इत्यादि डालकर पानी और हवाकी सहायतासे सडाया जाय। थोडे-थोडे दिनोंमें इस ढेरको पलटना चाहिए और पानीसे तर भी करना चाहिए। ध्यान रहे कि गढेमें साधारण नमी स्थर रहनी चाहिए।

बीजोंकी रक्षा— (१) बीजोंको हवा और सीलसे बचाकर रखो। (२) उन्हें छोटे-छोटे बन्द डिब्बों या कागदार बोतलोंमें ऐसी जगह रखो जहाँ गरमी या नमी न हो। (३) बीज बिलकुल साफ और धूपमें सुखाकर रखे जावें।

अन्न-संकटमें स्वास्थ्यवर्धक आहार

दिन भरमें–

नाम	भार	कैलोरी
(१) गेहूँ	२ छटाँक	४०८
(२) चावल	३ ,,	५९४
(३) दाल	$\frac{1}{2}$,,	८०
(४) तरकारी	६ ,,	२१८
(५) घी	१ ,,	४१६
(६) दूध	८ ,,	४९०
(७) शहद या देशी खाँड	$\frac{3}{4}$,,	१३९
(८) फल और गिरियाँ	८ ,,	६८६
		३०४१
सीजनके लिए १० प्रतिशत कमी		३०४
		२७३७

(ग्रामसुधारसे)

यज्ञोपवीत-रहस्य

(लेखक— श्रो. पं. नलिन म. भट्टजी, बलसाड.)

' यज्ञोपवीत ' शब्दमेंही यज्ञोपवीत संस्कारका रहस्य छिपा है। यज्ञोपवीत शब्द चार अवयवोंसे बना है। यज्ञ+उप+वि+इत। इस संस्कारका उपनिषद् जाननेके लिये हमें इन चारोंका शब्दार्थही शुरूमें जानना योग्य है।

यज्ञ शब्द 'यज्' धातुसे निष्पन्न होता है। पूजा, दान और संगतिकरण, ये तीन हैं अर्थ यज् धातुके। इन तीनों अर्थमें यहाँपर यज्ञ शब्द उपयुक्त है। 'उप' उपसर्गका अर्थ है "निकट"। 'वि' का अर्थ है विधिपूर्वक। गतिवाचक 'इ' धातुका 'इत' कर्मणि भूतकृदन्त है और उसका अर्थ होता है 'गया हुआ'-पहुंचा हुआ। मिलकर इन चारोंका पिण्डार्थ हुआ- "यज्ञके लिये विधिपूर्वक निकट पहुंचा हुआ।"

सोचनेसे पता लगेगा कि उपर्युक्त अर्थमें यज्ञ संज्ञा किसकी है? 'विधि' से क्या अभिमत है?। किसके पास कौन पहुंचा हुआ? सिलसिलेवार इन प्रश्नोंका जो शास्त्रीय उत्तर है, वही यज्ञोपवीतका रहस्य है।

चारों ओर फैली हुई यह अनन्त सृष्टिही मूलमें एक बड़ा यज्ञ है। सृष्टि-यज्ञ परमपिता परमात्माने अनन्त कालसे चलाया है। सृष्टि-यज्ञके यजमान परमपिताने अपनी कुल सन्तानकी इससे पूजा की है। इस द्वारा सब जीवोंको अनन्त रत्नका दान दिया है। और यह सृष्टिद्वारा अनन्त ब्रह्माण्डका एक भव्य मेला बना दिया है। यह अनन्त-अनुपम-दिव्य-अनन्यकार्य यज्ञ-सृष्टि यज्ञही ईश्वरका मौलिक यज्ञ है। उसी यज्ञकी उत्तरोत्तर प्रवृद्धिके लिये, ईश्वर पुत्र मनुष्यने, पंचमहायज्ञकी कल्पना करके, परमपिताका योग्य अनुकरण किया है। ये पंचमहायज्ञही 'यज्ञ' शब्दका यहाँ वाच्य है। अर्थात् 'यज्ञोपवीत' शब्दमें जो 'यज्ञ' पद है उसका अर्थ है 'पंचमहायज्ञ'।

तो फिर ये पांच यज्ञ कौनसे हैं? आर्यस्मृतिकारोंने अपनी परिभाषामें कहा है- देवयज्ञ, पितृयज्ञ, भूतयज्ञ, मनुष्ययज्ञ और ब्रह्मयज्ञ। इन पांचों प्रकारके यज्ञोंके आचरणमेंही गृहस्थ-जीवनकी सफलता है। इन पांचकाही अनन्त विस्तार मनुष्य जीवन है। तो इन पांचका क्या अर्थ होता है, हमें देखना चाहिये।

देवयज्ञ— सायं प्रातः सन्ध्योपासना, ईश्वरका ध्यान, ईश्वरके नामका परमप्रेमसे जप आदिका समावेश देवयज्ञमें होता है।

पितृयज्ञ— नमस्कारादिसे और अविच्छिन्न प्रजातंतुको रखकर भूमिस्थ और स्वर्गस्थ पितरोंको प्रसन्न करना, उनकी आज्ञाका पालन करना पितृयज्ञ है।

भूतयज्ञ— अपने घरमें पले हुए गौ भैंस आदि पशुओंको यथासमय घास पानी आदि देना और उनके गोष्ठ आदिका संशोधन करना, मूक पशुओंकी परमभावसे सेवा करना भूतयज्ञ है।

मनुष्ययज्ञ— वेदविद्वान् पंडित, कर्मयोगी संन्यासी, समाज, और जातिके सुयोग्य सेवकोंको यथाशक्ति धनधान्यवस्त्रादि देकर सत्कारना-उनके कार्यमें यथाशक्ति, निष्काम भावसे सहायता पहुँचाना मनुष्ययज्ञ है।

ब्रह्मयज्ञ— अपनी धर्मपुस्तकके नियमित, अर्थानुसंधानपूर्वक नित्य अभ्यासका नाम है ब्रह्मयज्ञ।

यथाविधि देवयज्ञसे परमपिता परमात्मा, पितृयज्ञसे पितर, भूतयज्ञसे जीवनपोषक तत्त्व देनेवाले मूक पशु, मनुष्ययज्ञसे सन्मान्य विद्वान, कर्मण्यसंन्यासी और जातिसेवक आदि सब जन प्रसन्न होते हैं। ब्रह्मयज्ञसे जीवन जीनेकी अलौकिक कुँजी मिलती है। और जिसके ऊपर इन सबकी कृपा है उसका यह लोक और परलोक दोनों सिद्ध होते हैं।

विचार करनेसे अनुभव होगा कि इन यज्ञोंका आचरण विना शुद्धबुद्धिके कभी नहीं होगा। क्योंकि इन सबमें सेवाकाही तत्त्व भरा हुआ है। और सेवा विमलमतिही कर सकता है। जिसकी मति मलिन है-स्वार्थसे पूर्ण है-औरोंका विचारही उसको अशक्य है। इसलिये पंचमहायज्ञोंके आचरणके लिये विमलमति अत्यावश्यक है।

तो विमल बुद्धि कैसे होगी? ईश्वरकी एकाग्र हृदयसे प्रार्थना करनेसेही मनुष्यकी बुद्धि बिल्कुल अभिजात-कुलीन स्फटिकनिर्मल होती है। इसलिये हमारे पूर्वजोंने यज्ञोपवीत संस्कारमें गायत्रीका उपदेशही मुख्यतया रखा है। भगवती गायत्रीसे बढकर कोई ऐसी प्रार्थना नहीं है जो बुद्धिकी शुद्धि कर सके। भगवती गायत्रीका पदार्थ होता है— "हे परमात्मन्! आप सच्चिदानन्द हैं। हम उस देवोंके देव जगत्स्रष्टा ईश्वरके सबसे श्रेष्ठ तेजोमय-प्रकाशमय स्वरूपका चिन्तन = हृदयमें ध्यान करते हैं, जो हमारी बुद्धियोंको प्रेरे = भले कर्मोंमें लगाये।"

इस तरह शुद्धबुद्धि होनेकी तीव्र तमन्ना होनेसे प्रार्थनाद्वारा मनुष्य अपने आपको विशुद्ध कर सकता है। और विशुद्धिमें, हृदयकी नितान्त निर्मलतामें सिद्धिमात्रका उदय है। यज्ञके लिये जो यज्ञीय मति चाहिये, गायत्री मंत्रके यथाविधि जपसे उत्पन्न होती है। यज्ञीय बुद्धिका उदय और स्थिरता मनुष्य जीवनकी कृतकृत्यता है। जीवनका यही रहस्य = उपनिषद् है। उसको जीवनमें कौन उतार सके? कौन इस रहस्यको बता सके? यह है प्रश्न। उसका उत्तर है यज्ञोपवीत शब्दके दूसरे पदमें-उप—

उपका अर्थ निकट होता है अर्थात् जीवनमें यज्ञबुद्धि प्राप्त करनेके लिये निकट जाना होता है। किसके निकट? तो जिसने स्वयं यज्ञीय बुद्धि जीवनमें संपादित की हो उस जीवनाचार्य गुरुके पास। जो जिस विद्याका आचार्य, उसीके पास उसका रहस्य जाननेके लिये जाना पडेगा। तो यज्ञविद्याको हृद्गत करनेके लिये यज्ञविद्याके आचार्यके पासही जाना होगा।

अब ऐसे आचार्यके पास जाना कैसा? किस तरह जाना होगा? पहुँचनेके भी कई प्रकार हैं। लेकिन विद्या सीखनेके लिये जब जाना पडता है तो विधिपूर्वकही जाना पडेगा विद्याप्राप्तिके लिये गुरुके पास जानेकी विधि भगवान् यदुनन्दनने बतायी है–

" तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया "

अर्थात् शिष्यको गुरुके पास जाना हो तो प्रणिपात, परिप्रश्न और सेवाको साथ लेकर जाना होगा। प्रणिपातका अर्थ है निरतिशय नम्रता। परिप्रश्नका अर्थ है अन्तरदर्शन-पूर्वक गुरुसे प्रश्न करना। और सेवाका अर्थ है-गुरु-आज्ञा पालनमें दत्तचित्त रहना। अर्थात् नम्रता—पृच्छा—और सेवाकी भावनासे गुरुके पास पहुँचकर जीवनका उपनिषद् सीखना होगा। इसका नाम है 'वि = विधि.'

अर्थात् यज्ञोपवीत शब्दका निचोड अर्थ हुआ कि यज्ञके लिये विधिपूर्वक गुरुके पास पहुँचा हुआ शिष्य। अब विचारकको पता लगेगा कि हमारे पूर्वजोंने यज्ञोपवीत संस्कारके ऊपर क्यों इतना भर दिया है। यज्ञभाव सामाजिक, आध्यात्मिक और प्रजाकीय सार्वजनीन नींव है। दृढ नींवपर रची हुई इमारत मजबूत होती है—अटूट होती है। इसीलिये ब्रह्मचर्य–आश्रम–प्रवेशका इतना महत्त्व है-इतना गौरव है-इतना प्रभाव है। जिस जातिका ब्रह्मचर्य–आश्रम व्रतादिसे सुरक्षित है, वह कभी अवनत नहीं होती वरन् उन्नतिके ओरही वह जाती है। जिस प्रजाका ब्रह्मचर्यमय सारस्वत जीवन मजबूत होता है उसको श्रेय और प्रेय दोनों मिलते हैं। और श्रेय और प्रेयकी प्राप्तिके लियेही हमारा मनुष्य जन्म है। उसीका नाम है विद्या। यज्ञोपवीत संस्कार विद्यावस्थाका प्रारंभ सूचक है। हमारी भूतकालीन महत्ता पुनः इस संस्कारके द्वारा उज्जीवित हो इतनी आशा रखते हुए इस रहस्यके संक्षिप्त विवरणसे उपरत होते हैं।

वेदोंका अध्ययन

' वेदोऽखिलो धर्ममूलम् । ' संपूर्ण वेद धर्मका मूल है। वेदसेही मानवोंके सत्य धर्मका प्रवाह शुरू हुआ है। ' धर्मं जिज्ञासमानानां प्रमाणं परमं श्रुतिः । ' धर्म जाननेवालोंके लिये श्रुतिही परम प्रमाण है। इस तरह वेदका महत्व वर्णन किया जाता है। पर ये केवल शब्द मात्रही हैं, क्योंकि आज ऐसे ग्रंथ उपलब्ध नहीं हैं, जिनके पाठसे मनुष्य जान सकेंगे कि सब धर्म-प्रवाह वेदसेही शुरू हुए हैं। इतनाही नहीं, परंतु वेदका सरल अर्थ जाननेके लिये भी प्रामाणिक ग्रंथ अभीतक नहीं हुए हैं। ऐसी अवस्थामें जिज्ञासु लोग वेदका ज्ञान किस तरह प्राप्त करें, यह एक कठिन समस्याही है।

संस्कृतभाषामें प्रवेश

वेदमें प्रवेश करनेके लिये संस्कृत भाषाके ज्ञानकी बडी आवश्यकता है। इसके लिये हमने संस्कृत सीखनेके लिये ' संस्कृत-पाठ-माला ' के २४ भाग बनाये हैं। (इसका मूल्य ७॥ रु. और डा. व्य. १ रु. है।) इसके साथ साथ ' वेदका स्वयं-शिक्षक ' भी बनाया है [दो भाग प्रत्येक. का मू. १॥) रु.] इन पुस्तकोंके पढ लेनेसे साधारण हिंदी भाषाको जाननेवाला मनुष्य भी वेदका अध्ययन करनेका प्रारंभ कर सकता है।

संस्कृत सीखनेकी यह पद्धति ऐसी सुगम है कि कोई भी हिंदी समझनेवाला मनुष्य प्रति दिन एक या आधा घण्टा इन पुस्तकोंका पाठ स्वयं करता जायगा, तो एक वर्षके अन्दर रामायण, महाभारत समझनेकी योग्यता प्राप्त कर सकता है।

इस तरह संस्कृतमें प्रवेश होतेही वह वेदका अध्ययन कर सकता है।

वेद-पाठ-विधि

वेदोंकी पाठविधि बनायी जा रही है। गत महायुद्धके कारण इन पुस्तकोंकी छपाईमें कागजके अभावके कारण बडीही क्षति हो गयी। पर अब शनैः शनैः कागजके मिलते जानेपर ये ग्रंथ भी तैयार होते जायेंगे।

वेदकी परीक्षाएँ और उपाधियाँ

वर्ष	परीक्षा	पाठमंत्र-संख्या	तैयारीके निबंध	प्रश्नपत्र संख्या	उपाधि
१	वेद-परिचय	३००	१	१	वेद-परिचित
२	वेद-प्रवेश	५००	२	२	वेद-प्रविष्ट
३	वेद-प्राज्ञ	१०००	२	३	वेद-प्राज्ञ
४	वेद-विशारद	२०००	३	३	वेद-विशारद
५	वेद-पारंगत	५०००	३	४	वेद-पारंगत
६	वेदाचार्य	(स्वतंत्र खोजपूर्ण निबंध)			वेदाचार्य

इस वेद-परीक्षाकी पाठविधिकी पुस्तकें तैयार होकर छप रही हैं। प्रथम तथा द्वितीय परीक्षाकी पुस्तकें तैयार होगई हैं।

१. वेदपरिचय. तीनों भाग (३०० मंत्रोंका अर्थ टिप्पणी समेत) मूल्य ४॥) डा. व्य. १)

२. वेदप्रवेश (५०० मंत्रोंका अर्थ टिप्पणी समेत) मूल्य ५) डा. व्य. १।)

आगेके ग्रंथ छप रहे हैं। जैसे जैसे छपकर तैयार होंगे, वैसी विज्ञापन-द्वारा सूचना दी जायगी।

मूल वेद-ग्रंथ तैयार हैं

वेदोंके मूल ग्रंथ, जिनमें भाष्य या अर्थ नहीं है, केवल मूलमात्र मंत्र हैं, तैयार हैं—

	मूल्य	डा. व्य.
१ ऋग्वेद संहिता	६)	१॥)
२ यजुर्वेद वाजसनेयी संहिता	२)	॥)
(छप रही है)		
३ सामवेद संहिता	३)	॥)
(छप रही है)		
४ अथर्ववेद संहिता	६)	१)
(छप रही है)		
५ यजुर्वेद तैत्तिरीय संहिता	६)	१)
६ ,, काठक संहिता	६)	१)
७ यजु० मैत्रायणी संहिता	६)	१)
८ ,, काण्व संहिता	४)	॥।)

९ यजुर्वेद कपिष्ठल कठसंहिता ६) १)
(छप रही है)
१० अथर्ववेद पिप्पलाद संहिता ६) १)
(छप रही है)

वेदाध्ययन करनेवालोंकी सुविधाके लिये सब संहिताओंमें से एक एक देवताके मंत्र छांट कर दैवत-संहिता तीन भागोंमें छापी है। इन भागोंमें वेदके सभी पादबद्ध मंत्र आ गये हैं। एक एक देवताके मंत्रोंका अध्ययन करनेवालोंके लिये ये मंत्र-संग्रह अत्यंतही उपयोगी हैं। इससे थोडे समयमें बहुतही अध्ययन हो सकता है—

दैवत-संहिता

१ दैवत-संहिता, प्रथम भाग मूल्य ६) डा. व्य. १॥)
२ ,, ,, द्वितीय ,, ,, ६) ,, १॥)
३ ,, ,, तृतीय ,, ,, ६) ,, १॥)
(छप रहा है)

इनमें निम्नलिखित देवताओंके मंत्र छपे हैं। इनका ब्यौरा यह है—

(१) दैवत-संहिता (प्रथम भाग)

१ अग्नि देवता	मंत्रसंख्या	२४८३	मूल्य	३)
२ इन्द्र ,,	,,	३३६३	,,	३)
३ सोम ,,	,,	१२६१	,,	२)
४ मरुत् ,,	,,	४६४	,,	१)

कुल मंत्र-संख्या ७५७१

(२) दैवत-संहिता (द्वितीय भाग)

५ अश्विनौ देवता	मंत्रसंख्या	६८९	मूल्य	३)
६ आयुर्वेद	,,	२३४५	,,	५)
७ रुद्रदेवता	,,	२२७	,,	२)
८ उषा ,,	,,	१९४	,,	२)
९ अदितिः, आदित्याश्च ,,		११३७	,,	४)
१० विश्वे देवाः	,,	२३२०	,,	५)

कुल मंत्र-संख्या ६९१५

(३) दैवत-संहिता (तृतीय भाग)

देवता	मंत्रसंख्या	देवता	मंत्रसंख्या	देवता	मंत्रसंख्या
११ वायुः	१२३	२९ संज्ञानम्	१८	४७ पृथिवी	८१
१२ वरुणः	१५९	३० मनः	१२	४८ द्यावापृथिवी	६७
१३ वास्तोष्पतिः	८७	३१ मन आवर्तनम्	१२	४९ ऋभवः	९८
१४ वेनः	९	३२ असुनीतिः	६	५० क्षेत्रपतिः	४
१५ विश्वकर्मा	३४	३३ हस्तः	२	५१ पणयः	६
१६ सदसस्पतिः	४	३४ मन्युः	२०	५२ मायाभेदः	३
१७ अहिः,अहिर्बुध्न्यः	४	३५ भाववृत्तम्	२२	५३ ब्रह्मजाया	१८
१८ बृहस्पतिः	९६	३६ आशीः [प्रायाः]	१३	५४ गौः	३३३
१९ ब्रह्मणस्पतिः	६१	३७ होत्राशिषः	६	५५ अश्वः	८२
२० पुरुषः	१७३	३८ पथ्या स्वस्तिः	८	५६ हरिः	१४
२१ आत्मा	१९४	३९ अभिशापः	४	५७ दधिक्रा	२५
२२ ब्रह्म	८३	४० दम्पती	८	५८ सरमा	५
२३ अध्यात्मम्	४२३	४१ दम्पत्याशिषः	९	५९ शुनः, शुनासीरौ	४
२४ कः [प्रजापतिः]	५५	४२ वधूवासःसंस्पर्शनिन्दा	२	६० श्वानौ	३
२५ जीवः	७	४३ कामः	५२	६१ तार्क्ष्यः	३
२६ वाक्	२५	४४ रतिः	६	६२ श्येनः	१४
२७ श्रद्धा	६	४५ रेतः	४	६३ शकुन्तः	
२८ ज्ञानम्	१२	४६ निर्ऋतिः	१०	(कपिञ्जलरूपी इन्द्रः)	६

देवता	मंत्रसंख्या
६४ अक्षाः	७
६५ अक्षः कितव-निन्दा	९
६६ कृषिः	१
६७ ब्रह्मनः	१
६८ अरण्यानी	६
६९ सीता	७
७० रथाङ्गानि	४
७१ रथः	५
७२ दुन्दुभिः	२६
७३ द्रुघणः इन्द्रो वा	१२
७४ संग्रामाशिषः	२२
७५ अग्निः	४
७६ विश्वामित्रः	३
७७ वामदेवः	२
७८ वसिष्ठ-पुत्राः, इन्द्रो वा	९
७९ वसिष्ठः	५
८० वसिष्ठावी:	१
८१ रोमशा	१
८२ अङ्गिरः पित्रथर्वभृगुसोमाः	१
८३ उपाध्यायः	१
८४ भावयव्यः	६
८५ प्रजापतिः हरिश्चन्द्रः धर्मे सोमो वा	१
८६ स्वनयस्य दानस्तुतिः	७
८७ सोमकः साहदेव्यः	२
८८ पुरुमीळ्हौ वैददश्विः (तरन्तो वैददश्विः)	२

देवता	मंत्रसंख्या
८९ तरन्तमहिषी शशीयसी	४
९० रथवीतिर्दार्भ्यः	३
९१ सुदासः पैजवनः	४
९२ राजा	२१
९३ वृबुस्तक्षा	३
९४ सार्ञ्जयः प्रस्तोकः (दानस्तुतिः)	४
९५ आसङ्गः	५
९६ विभिन्दुः	२
९७ पाकस्थामा कौरयाणः	४
९८ कुरुङ्गः	३
९९ कशुश्चैद्यः	३
१०० तिरिन्दिरः पार्शव्यः	३
१०१ त्रसदस्युः पौरुकुत्सः	२
१०२ चित्रः	२
१०३ वरुः सौषाम्णिः	३
१०४ पृथुश्रवाः कानीतः	४
१०५ श्रुतर्वा आर्क्ष्यः	३
१०६ ऐन्द्रो वसुक्रः	५
१०७ देव्यःइन्द्राणीवरुणान्यग्नाय्यः	२
१०८ कुरुश्रवणत्रासदस्यवः	२
१०९ उपमश्रवा मैत्रातिथिः	४
११० असमातिः	५
१११ सावर्णेर्दानम्	४
११२ ऋक्षाश्वमेधौ	६
११३ पुरूरवा	९
११४ उर्वशी	९

देवता	मंत्रसंख्या
११५ दक्षिणा, दक्षिणा दातारो वा	११
११६ शत्रुसेना-मोहनम्	२
११७ शत्रुनाशनम्	१७०
११८ श्रेयःप्राप्तिः	५
११९ बल-प्राप्तिः	३
१२० वर्चःप्राप्तिः	३
१२१ ऊर्जःप्राप्तिः	३
१२२ अनुमतिः	६
१२३ केवलः पतिः	५
१२४ मधुविद्या	२४
१२५ अध्यापकविघ्नशमनम्	२
१२६ अतिथि-सत्कारः (ब्रह्मा, अतिथिः, विद्या.)	७३
१२७ विद्युत्	४
१२८ कामिनीमनोऽभिमुखीकरणम्	२
१२९ रयिसंवर्धनम्	२
१३० शितिपाद् अविः	६
१३१ विश्वजित्	४
१३२ तारके	१
१३३ मेखलाबन्धनम्	५
१३४ राष्ट्रसभा	३
१३५ विवाह-प्रकरणम्	१३९
१३६ खिल-सूक्तानि	२९१
१३७ कुन्तापसूक्तानि	१४७
१३८ माहनम्न्यार्षिक,	१०
कुल मंत्र-संख्या	३७५८

इसके अतिरिक्त सब याजुष संहिताके प्रकरण भी इस विभागमें हैं। (यह ग्रंथ छप रहा है।) इन तीनों संहिताओंमें सब वैदिक मंत्र आगये हैं। इन दैवत-मंत्र संग्रहों के अर्थ भी छप रहे हैं—

(१) मरुद्देवताका मंत्र-संग्रह

अन्वय, अर्थ, टिप्पणी, भावार्थ और विवरणके तथा अनेक सूचियोंके साथ (मू. ५) डा. व्य. १) यही ग्रंथ वेद-प्रवेश-परीक्षाके नियत किया है।

(२) अश्विनौ देवताका मंत्र-संग्रह

(छप रहा है।) अन्वयादि पूर्व मरुद्देवताके अनुसारही है। अन्य देवताओंके मंत्रोंके अर्थ तयार हो रहे हैं। तैयार होनेपर छप जायँगे।

आर्षेय-संहिता

ऋषिक्रमानुसार मंत्रसंग्रहका नाम ' आर्षेय संहिता ' है। ऋषिक्रमानुसार भी अर्थ जानना आवश्यक है।

दैवतक्रम और ऋषिक्रम ऐसे दो क्रम मंत्रोंके हैं और वेदका यथार्थ अर्थ जाननेके लिये इन दोनों क्रमोंसे वेदमंत्रोंका अर्थ जानना चाहिये । इसलिये हमने जैसी ' दैवत-संहिता ' मुद्रित की है, वैसीही ' आर्षेय संहिता ' भी मुद्रण करनेका उपक्रम किया है । ऋग्वेद-संहिताका नवम मण्डल और सामवेद-संहिता (पूर्वार्ध) ये दैवत-संहिताके नमूने हैं । शेष ऋग्वेद-संहिता आर्षेय-संहिता, थोडेसे हेरफेरसे है ।

हमने आर्षेय-संहिताके निम्नलिखित भाग इस समयतक अर्थके साथ प्रकाशित किये हैं-

	ऋषिनाम	गोत्रनाम	मंत्र संख्या	देवता संख्या	मूल्य
१	मधुच्छन्दा	वैश्वामित्रः	१२०	१०	१)
२	मेधातिथिः	काण्वः			
	मेध्यातिथिः	,,	३२०	४३	२)
३	शुनःशेपः	आजीगर्तिः			
	(देवरातः)	(वैश्वामित्रः)	११३	१२	१)
४	हिरण्यस्तूपः	आंगिरसः	९६	५	१)
५	कण्वः	घौरः	१२५	९	
	प्रस्कण्वः	काण्वः	१०८	६	२)
६	सव्यः	आङ्गिरसः	७२	१	१)
७	नोधा	गौतमः	८५	४	१)
८	पराशरः	शाक्त्यः	१०५	२	१)
९	गोतमः	राहूगणः	(छप रहा है)		
१०	कुत्सः	आंगिरसः	,,		

अन्य ऋषियोंके भाष्य बने हैं और वे भी यथाक्रम छप जायेंगे और इस तरह संपूर्ण " आर्षेय-संहिता " छपकर तैयार होगी ।

अथर्ववेदका सुबोध भाष्य

कांड	१ से ५	मू. ८)	डा. व्य. १॥)
,,	६ से ९	,, ७)	,, ,, १।)
,,	१३ से १८	,, ६)	,, ,, १)

कांड १० से १२ समाप्त हैं । उपर्युक्त काण्ड अलग अलग भी मिलेंगे । मू० २) डा. व्य. ॥) प्रत्येक काण्डके लिये ।

परीक्षाके नियम

१. वेदकी परीक्षाएँ चैत्र, श्रावण तथा मार्गशीर्षमें होती हैं । परंतु परीक्षार्थीकी सुविधाके अनुसार अन्य समयमें भी ली जा सकती हैं ।

२. परीक्षार्थीको आवश्यक है कि वह प्रथम ' प्रार्थनापत्र ' हस्ताक्षर करके अपने संपूर्ण पतेके साथ " मंत्री स्वाध्याय-मंडल, औंध, जि. सातारा " के पास भेज देवे, साथ साथ अपने नगरके प्रतिष्ठित भद्र पुरुषका निरीक्षक होनेके लिये अनुमति-दर्शक हस्ताक्षर भी भेज देवे । निरीक्षणकर्ता शिक्षा-विभागमें कार्य करनेवाला अनुभवी सज्जन हो । स्वाध्याय-मण्डलसे स्वीकृति और परीक्षाके लिये तिथि निश्चित होकर आ जायगी, तब परीक्षा होगी ।

३. प्रत्येक परीक्षाके प्रत्येक प्रश्नपत्रके लिये ३) रु. [तीन] परीक्षक-दक्षिणा प्रथम आनी चाहिये, तब प्रश्नपत्र और उत्तर लिखनेके लिये आवश्यक कागज समयपर भेजे जायंगे । यहांसे आये कागजोंपरही उत्तर लिखने होंगे ।

४. परीक्षाके नियम तथा निरीक्षणकर्ताके लिये आवश्यक सूचनाएं समयपर भेजी जावगीं ।

५. परीक्षार्थी स्वा० मं० द्वारा निर्धारित पाठ्य पुस्तकोंकी सहायतासे अध्ययन करे अथवा प्रारम्भमें निर्धारित संख्यामें अन्य मंत्रोंका अध्ययन करे । स्वयं मंत्रोंका निश्चय करनेके लिये निम्नलिखित नियम हैं—

(अ) सूक्त संपूर्ण अर्थात् अखंड होने चाहिये, तथा ९ मंत्रोंसे अधिक मंत्र-संख्यावाले सूक्त होने चाहिये ।

(आ) एक ऋषिकेही करीब १०० मंत्रोंसे अधिक मंत्र न हों और एक देवताके भी करीब २०० मंत्रोंसे अधिक न हों । छन्द भी अनेक प्रकारके हों । ऋषि देवता और छन्दोंकी विविधता हो । अखण्ड सूक्तोंके हिसाबसे यह संख्या जैसी बने वैसी न्यूनाधिक बनायी जाय ।

(इ) ऋग्वेद और अथर्ववेदके मंत्र बहुसंख्य हों और अन्य वेदोंके अल्प-संख्य हों । गद्य मंत्र प्रतिशतक ५ से अधिक न हों ।

(ई) मंत्र स्वयं पसंद करने हों, तो प्रथम स्वाध्याय मंडल की अनुमति लेनी आवश्यक होगी ।

६. परीक्षार्थी मंत्रोंके अर्थका अध्ययन स्वाध्याय मंडलकी पद्धतिसे करे, अथवा अन्यान्य भाष्यकारोंकी पद्धतिसे करे, अथवा अनेक भाष्योंका अध्ययन करके अपनेही अर्थ करे। मंत्रोंका शब्दार्थ सरल और सुबोध और खींचातानीके विना होना चाहिये यही मुख्य बात है।

७. परीक्षार्थी स्वाध्याय मंडल द्वारा प्रकाशित पुस्तकोंसे अध्ययन करेंगे, तो उनको बडी सहायता मिल सकती है, क्योंकि ये अर्थ अत्यंत सरल हैं। पर विद्यार्थीके लिये इस विषयमें पूर्ण स्वतंत्रता रखी है। क्योंकि परतंत्र होकर वेदका अध्ययन नहीं होगा और परवशतामें किये अध्ययनसे मननशक्ति भी नहीं बढेगी।

सूचना- वेदमंत्रोंका अर्थ, भावार्थ, संकेतार्थ, व्यंगार्थ, लक्ष्यार्थ, ध्वन्यर्थ, अर्थापत्त्यर्थ, श्लेषार्थ आदि जानना यह बडे मननके पश्चात् होना संभव है, वह आज हो नहीं सकता, ये परीक्षाएँ केवल सरलार्थके लियेही हैं और यह सरल अर्थ भी भविष्यमें सिद्ध होनेवाला है। इसीलिये इस समय विद्यार्थीके लिये पूर्ण स्वतंत्रता रखी है।

प्रत्येक परीक्षामें इतनी मंत्र-संख्याका अध्ययन होना चाहिये यह प्रारम्भमें लिखा है और परीक्षाके पूर्व इतने निबंध लिखने चाहिये, यह भी वहीं लिखा है। प्रत्येक निबंधका कलेवर १०००० अक्षरोंसे कम नहीं होना चाहिये। निबंधोंके संबंधके नियम ये हैं—

निबंधके विषयमें नियम

परीक्षार्थीको परीक्षाके पूर्व निबंध भेजना अत्यावश्यक है। इन निबंधोंके विषयके नियम ये हैं—

(१) प्रथम परीक्षा 'वेद-परिचय' है। इस परीक्षाकी तैयारीकी जाँच होनेके लिये परीक्षार्थीको एक निबंध अपनी तैयारी होनेके बाद भेजना चाहिये। इसी तरह द्वितीय (वेदप्रवेश) और तृतीय (वेद-प्राज्ञ) परीक्षाके लिये प्रत्येक परीक्षाके लिये दो दो निबंध भेजने चाहिये। तथा चतुर्थ (वेद-विशारद) और पंचम (वेद-पारंगत) परीक्षाके लिये प्रत्येकके लिये तीन तीन निबंध भेजने चाहिये। इन निबंधोंको देखकर परीक्षक निश्चय कर सकते हैं कि, परीक्षार्थीका अध्ययन हुआ है या नहीं। और यह निश्चय करके परीक्षक प्रश्नपत्र उनके निरीक्षकके पास भेज देंगे। और निरीक्षक परीक्षाका प्रबंध करेंगे, तथा उत्तरपत्र स्वाध्याय मण्डलके पास भेज देंगे और परीक्षक उनकी परीक्षा करेंगे।

(२) षष्ठ परीक्षा वेदाचार्यकी है। इसके लिये चारों वेदोंकी सभी उपलब्ध संहिताएं, सब ब्राह्मण, आरण्यक तथा उपनिषद् ये ग्रन्थ मुख्यतःखोज करनेके लिये रखे हैं। इतिहास पुराण आदि अन्य ग्रंथ भी तुलना करनेके लिये लेने योग्य हैं। वेदाचार्यकी परीक्षा नहीं होगी, परंतु वैदिक वाङ्मयकी खोज करके किसी एक विषयपर बृहत् निबन्ध लिखना चाहिये। इस निबंधका कलेवर पैका टाइपसे छपे क्रौन अष्ट पत्र जैसे १०० पृष्ठोंसे कम नहीं होना चाहिये। प्रति पृष्ठपर २००० अक्षर छपते हैं, इस हिसाबसे १०० पृष्ठोंका लेख होना चाहिये। यदि किसी कारण एकही विषयपर इतना बडा निबंध न हो सकता हो, तो परीक्षार्थी दो या तीन विषय अपने लिये स्वा० मं० की अनुमतिसे पसंद कर सकते हैं।

(३) प्रारंभिक ५ परीक्षाओंके लिये मंत्रसंग्रहसेही जो विषय बन सकते हैं, उनमेंसे कुछ विषय निबंधके लिये पसंद करने चाहिये, जैसे—

(अ) देवताका स्वरूप, देवताके कार्य, देवताके गुण देवताका प्रभाव,

(आ) देवताके शत्रु, शत्रुसे और भक्तसे देवताका बर्ताव,

(इ) देवताके शस्त्र, रथ, किले, नगर, युद्ध, सैन्य अनुयायी, लडाईके प्रकार,

(ई) देवतासे मानवोंको लेनेयोग्य बोध, वैयक्तिक, समाजिक, राजकीय, व्यावहारिक,

(उ) मंत्रोंसे ज्ञात होनेवाली विद्याएँ, भोजन, खानपान पेय पदार्थ, वस्त्र, आभूषण,

(ऊ) शरीरोंके अवयवोंका वर्णन, घरोंका वर्णन, सार्वजनिक स्थानोंका वर्णन,

(ऋ) स्त्रियोंके संबंधमें जो भी विधान हों उनका संकलन,

(ॠ) जिस समय ये मंत्र मानवोंके जीवनमें ढाले जायँगे, उस समय मानव-समाज कैसा बनेगा और आज कैसा है?

(ऌ) देवता-वर्णनसे विद्या, कला, हुनर, बल, शौर्य वीर्य, संघटना आदिमेंसे किसकी सिद्धि होती है?

इस तरह अनेक विषय जो अध्ययनके मन्त्रोंमें सिद्ध होंगे उनको निबंधके रूपमें लिखना चाहिये । इन निबंधोंको परीक्षक देखेंगे और निश्चित करेंगे कि परीक्षार्थीकी परीक्षाके लिये तैयारी हो गयी है या नहीं। इसलिये ये निबंध भेजना परीक्षार्थीके लिये अत्यंत आवश्यक है ।

(४) वेदाचार्य परीक्षाके लिये निबंध तो एकही है, पर उसका कलेवर बहुत बड़ा है और खोजका क्षेत्रभी बहुतही विस्तीर्ण है। इस परीक्षार्थीको निबंधके विषयोंकी सूचना देनेके लिये कुछ विषय यहा हम लिखते हैं—

१ संहिता, ब्राह्मण आरण्यक, उपनिषदोंकी तुलना,
२ वेद और भगवद्गीता (तथा अन्य अनेक गीता) ग्रंथोंकी तुलना,
३ वेद और स्मृतियोंकी तुलना
४ वेद और महाभारत रामायण तथा पुराणोंकी तुलना
. पौराणिक कथाओंके वैदिक मूलकी खोज,
५ वेद और तंत्र ग्रंथोंकी तुलना
६ वेद और आचार्योंके मतोंकी तुलना,
७ वेद और जेंदअवस्ता, बायबल, कुराण आदिकी तुलना,
८ वेद और बुद्ध तथा जैन आदि मतोंकी तुलना,
९ वेद और साधुसंतोंके वाङ्मयकी तुलना,
१० वेद की साम्यवाद, समाजवाद, राष्ट्रवाद आदि आधुनिक विचारकोंके विचारोंके साथ तुलना,
११ वेदका राज्यशासन समाजसंगठन, वैयक्तिक अभ्युदय, मुक्तिका अनुष्ठान इ०
१२ वेदका आदर्श राजा और राज्यशासक,
१३ दस्यु, अनार्य, दास, असुर, वृत्र आदिकोंका स्वरूप निर्णय,
१४ वेदमें विवाहकी कल्पना, बाल या प्रौढ, स्वयंवर य अन्य प्रकारके विवाह
१५ चार वर्ण तथा चार आश्रम और वेद
१६ वैदिक यज्ञ, याग, क्रतु, सत्र इ०
१७ वेदकी ईश्वरविषयक कल्पना, अनेक देवतावादका निर्णय,
१८ वैदिक छन्द,
१९ वैदिक ऋषि, ऋषियोंके कुलोंकी खोज और संगति
२० वेदमन्त्रोंमें भूमिके स्थान नगर, पर्वत, नदियाँ आदि निर्देश ।

इत्यादि विषयोंका निर्णय करनेयोग्य उत्तम परिश्रमपूर्वक यह निबंध लिखा जाना चाहिये । येही विषय हैं ऐसा नहीं है, प्रत्युत इस तरहके अन्य सैकडों विषयोंपर निबंध हो सकते हैं । जो निबंध सरल, सुबोध, सप्रमाण, सयुक्तिक और निश्चित वैदिक सिद्धान्तका प्रतिपादन करनेवाला होगा उसीको आचार्य उपाधिके लिये योग्य समझा जायगा । इसकी परीक्षा करनेवाले वेदके अनेक विद्वान् होंगे और सर्व संमतिसे ही वेदाचार्यके लिये यह योग्य है वा नहीं इसका अन्तिम निर्णय होगा । परीक्षा समितिका निर्णय अन्तिम होगा ।

(५) सभी निबंध सुपाठ्य और कागजके एकही ओर लिखे तथा कागजके चारों ओर एक अंगुल या अधिक हाशिया छोडकर तथा दो पंक्तियोंमें एक पंक्तिका अन्तर रखकर लिखे होने चाहिये । दुष्पाठ्य निबंध स्वीकृत नहीं होंगे और न देखे जायेंगे ।

(६) निबंध सब प्रकारसे पसंद हुआ तो उसका प्रकाशन स्वयं स्वा० मंडल करेगा । पर निबंधके प्रकाशनके लिये वह बाध्य नहीं समझा जायगा ।

(७) निबंधके वापसीके लिये आवश्यक डा० व्य० परीक्षार्थीसेही आना चाहिये । तबही वह वापस भेजा जायगा ।

(८) वेदाचार्य परीक्षाके लिये परीक्षक समितिकी दक्षिणा केवल १०) रखी है ।

(९) पहिली अन्य परीक्षाएँ देनेके विना भी विद्वान् पण्डित अपने खोज पूर्ण निबंध भेजकर इस वेदाचार्य परीक्षाके लिये उपस्थित हो सकते हैं । ऐसा करना हो तो उनको प्रथम एक सहस्र मन्त्रोंका अर्थ भावार्थ, टिप्पणी आदि लिखकर स्वा० मं० के पास भेजना होगा। इस लेखको देखकर उनको निबंध लिखने की आज्ञा मिलेगी । इसी तरह संस्कृतके और शास्त्रोंके तथा वेदोंके विद्वान् पण्डित पहिली परीक्षा न देते हुए भी आगेकी परीक्षाके लिये उपस्थित हो सकते हैं ।

सूचना— पूर्व परीक्षा न देते हुए आगेकी परीक्षा देनी हो, तो विषय निबंधोंकी संख्यासे एक निबंध अधिक

भेजना होगा। इस तरह विद्वान् पण्डित किसी भी परीक्षाके लिये उपस्थित हो सकता है। इस तरह उत्तर उत्तर परीक्षाके लिये उपस्थित होनेवाले विद्वान् प्रथम अपनी शास्त्र-परिचयकी योग्यता स्वा० मण्डलको लिखें और जिस परीक्षाके लिये बैठना हो उसकी संमति मांगें। विद्वानोंके लिये ऐसी सहूलियत अवश्य मिलेगी।

उपाधि

परीक्षा उत्तीर्ण होनेपर उपाधि यहांसे भेजी जायगी।

इन नियमोंमें स्वा० मण्डलकी विद्वत्सभा तथा कार्यकारिणी समितिद्वारा योग्य समयमें आवश्यकतानुसार परिवर्तन होगा और वही प्रकाशित या अप्रकाशित होनेपर भी परीक्षार्थीको स्वीकार करना होगा।

निवेदन-कर्ता
श्रीपाद दामोदर सातवळेकर
अध्यक्ष, स्वाध्याय-मण्डल,

परीक्षाके निरीक्षकके लिये
सूचना

१. निरीक्षकके पास रजिष्ट्रीसे प्रश्नपत्र भेजे जायेंगे।

२. प्रश्नपत्रके साथ सूचना-पत्र होगा वैसी ही परीक्षाकी व्यवस्था करना निरीक्षकका कर्तव्य है।

३. परीक्षा होतेही उत्तरपत्र रजिष्ट्रीसे स्वा० मं० के पास वापस आने चाहिये। डा० व्य० अधिक होगा, तो सूचना आनेपर यहांसे भेजा जायगा।

४. परीक्षाके समय सब प्रश्नोंके उत्तर परीक्षार्थीको स्मरणसेही लिखने होंगे।

५. परीक्षाका समय नियत है, उतनेही समयमें उत्तर पत्रका लेखन होना चाहिये।

६. उत्तर-पत्रके लिये कागद यहांसे भेजे जाते हैं, उनपरही उत्तर लिखने चाहिये।

७. प्रश्नपत्र देनेका और उत्तरपत्र लेनेका समय नियत स्थानपर निरीक्षक दर्ज करें और उत्तर-पत्र रवाना करें।

स्वाध्याय-मण्डल,
औंध (सातारा)

प्रार्थना-पत्रका नमूना

श्री० मन्त्री, स्वाध्याय-मण्डल, औंध [जि० सातारा]

नमस्ते। निवेदन है कि, मैं ' 'की परीक्षा देना चाहता हूं। मेरा नियत मंत्रोंका अध्ययन हुआ है। मेरे निबंधभी स्वा० मं० से स्वीकृत हो चुके हैं। इस पत्रके साथ प्रश्नपत्रोंके लिये आज की डाकसे परीक्षक दाक्षिणाका शुल्क भेजा है। कृपया प्रश्नपत्र भेज दीजिये।

परीक्षाके निरीक्षणका कार्य श्री० म० ... ... ने स्वीकार किया है। भवदीय

नाम ... ...
पता ... ...
ग्राम तथा पोष्ट ... ...
जिला ... ...

निरीक्षणके कार्यके लिये नियुक्त हुए सज्जनकी सम्मति।

श्री० मन्त्री, स्वाध्याय-मण्डल, औंध [जि० सातारा]

नमस्ते। परीक्षाका निरीक्षण करना मैंने स्वीकार किया है। परीक्षाका निरीक्षण मैं आपके नियमानुसार करूंगा और परीक्षा समाप्त होतेही उत्तर-पत्र गुप्ततासे साथ रजिष्ट्री डाकसे भेज दूंगा।

भवदीय

नाम ... ...
पता ... ...
पोष्ट ... ...
जिला ... ...